श्रेय

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'

वीर बन्दा वैरागी

(विशेषांक)

अंक ३ २०२७ विक्रमी

संपादक
डा० रामदत्त भारद्वाज
मोहनलाल श्रीवास्तव

सौन्दर्यं साहितीनां जगति भरतभूनिर्मितानां नितान्तं ।
भूयात् सञ्चारयन्ती प्रयतमतिरियं पत्रिका विश्ववन्द्या ।।
पन्थानं दर्शयन्ती सरसमधुरिमापूरितं श्रेयसः स्वं ।
श्रेयोनाम्ना प्रसिद्धा गमयतु सुयशःसाहितीकारसङ्घम् ।।

आचार्य अमृतवाग्भट

श्रेय

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'

वीर बन्दा वैरागी

(विशेषांक)

अंक ३—~~आषाढ़~~ आश्विन २०२७ वि०

मूल्य १.५० प्रति – ५.०० वार्षिक

संपादकीय कार्यालय—१७ए, बैंक इन्क्लेव, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली–२७

दूरभाष : ५८६८८५

'अलख निरञ्जन'—महारब उठे बन्धन टुटे करे भयभञ्जन।
बक्षेर पाशे घन उल्लासे असि बाजे झञ्झन्।
पञ्जाब आजि गरजि उठिल, 'अलख निरञ्जन'।

× × × ×

'जय गुरुजीर' हांके शिखवीर सुगभीर नि:स्वने।
मत्त मोगल रक्तपागल 'दीन् दीन्' गरजने॥

गुरुदासपुरे गड़े—बन्दा यखन बन्दी हइल तुरानि सेनार करे,
सिंहेर मतो शृंखलगत बांधि लये गेल धरे—दिल्लिनगर–' परे।
बन्दा समरे बन्दी हइल गुरुदासपुर गड़े॥

सम्मुखे चले मोगलसैन्य उड़ाये पथेर धूलि
छिन्नशिखेर मुण्ड लइया वर्षाफलके तुलि।

शिखसात शत चले पश्चाते, बाजे शृंखलगुलि,
राजपथ–परे लोक नाहि धरे, बातायन याय खुलि।
शिख गरजय 'गुरुजीर जय' परानेर भय भुलि।
मोगल ओ शिखे उड़ालो आजिके दिल्लीपथेर धूलि॥

—वीर बन्दा वैरागी के प्रति विश्वकवि रवीन्द्र के उद्गार

अन्तर्वस्तु

सम्पादकीय

अन्तर्बाह्य जगत् के एकस्थ पर आश्रित होने से अनुभूति को जीवन संरचना में विशेष स्थान प्राप्त है। इस दृष्टि में जितना अहम्‌व्यापक होगा, उतनी ही अधिक चिन्मयता होगी और अनुभूति अनेक मूल्यों के निर्धारण में सक्रिय रहेगी।

राष्ट्रियता में अनुभूति का शाश्वत सन्दर्भ है। यदि हमें यह अनुभव नही हो पाता कि हम स्वतन्त्र हैं तथा हमारे अहम् को हमारे इदम् में स्थान है तब नवीन संघर्ष की आधार-शिला रोपनी होगी। यह आधार-शिला कुछ सुविधाओं के प्रति हृदय की आकुलता नहीं हो सकती। अथवा किसी प्रान्त, वर्ग और परिस्थिति की उपयोगी ताल-मेल से राजनीति जगत् में कुछ समय के लिए स्थान बना लेने मात्र से भी संघर्ष का आधार सुदृढ़ नहीं होगा।

राष्ट्र और व्यक्ति की अहम्मन्यता को एकस्थ करके जीवन-मृत्यु की स्पष्ट स्थिति के ज्ञान से संचालित बौद्धिक क्रान्ति ही राष्ट्र को प्राण-वाहिनी शक्ति दे सकती है। खोखली बौद्धिक कुण्ठाओं और स्व-परिवेष्ठित सुविधा-कारिणी नीति के चपल प्रदर्शन या आत्म-विज्ञप्ति से पीड़ित व्यक्तित्वों के जमघट से शक्ति नहीं मिलेगी।

यह सत्य है कि बन्दा वैरागी परम्परागत योग-साधक थे और गुरु गोविन्द सिंह की आत्म-पीड़ा के सहधर्मी बने थे। उन्होंने राष्ट्र पर सर्वस्व न्यौछावर कर दिया परन्तु उन्हें राष्ट्रोचित सम्मान इसीलिए नहीं मिला कि वे हिन्दू-तत्व ज्ञानी थे और इस देश की जिजीविषा के लिए हिन्दू तत्व दर्शन को आवश्यक मानते थे।

यह संकलन उनकी विविध परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन है। जिसका इतिहास और साहित्य जगत् में स्थान है।

श्रद्धाञ्जलि

पार्वत्यपीठ समधिष्ठति पुञ्छराज्ये
राजौरपत्तन भुवि प्रथिते सुवंशे ।
प्राप्योद्भवं रिपुजयोद्भव कीर्तिवेशं
वन्द्यः स यः समनयत् त्रिदिवेशदेशम् ।। १ ।।

स्वप्रान्तमात्रपरिरक्षण राजवृत्ति
पन्थैकराग परिरञ्जन शिष्यवृत्तिम् ।
हित्वा जगौ सकल हिन्दु समाजगीति
योऽसौ सदा विजयतां विरलो विरागी ।। २ ।।

संग्रामसिंहमपि यः सुरुषोऽतिशायी
राणाप्रतापमपि यः पुरुषोऽतियायी ।
नीतिप्रयोगमनु यः शिवराजरागी
वंद्यः स एव महनीययशा विरागी ।। ३ ।।

भल्लान्निभाल्य परितोधृनवीरमुण्डान्
क्रूरैर्निहत्य निहितं च सुतं स्वमंके ।
यो धैर्यधर्ममजहन् मुगलैरघानि
वंद्यः स नः समरधीरवरो विरागी ।। ४ ।।

आचार्य, रामनाथ सुमन

उप-राज्यपाल,
राज निवास, दिल्ली ।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि वीर बंदा वैरागी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए ७ नवम्बर को एक समारोह आयोजन किया गया है और इस अवसर पर एक विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है।

समारोह की सफलता और विशेषांक के सफल प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामनाएं।

(आदित्य नाथ झा)
उप-राज्यपाल, दिल्ली ।

केदार नाथ साहनी,
अध्यक्ष, स्थायी समिति,
टाउन हाल, दिल्ली-६

यह जान कर हर्ष होता है कि आप वीर बंदा वैरागी समिति की ओर से विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। बंदा वीर वैरागी भारत-मां के एक ऐसे अनन्य सपूत हैं जिन पर सारा राष्ट्र गौरव कर सकता है। न्याय और धर्म के लिए जिस वीरता से वे लड़े, जिस शूरता का इतिहास में वे परिचय छोड़ गये हैं उस पर युग-युगान्तर तक हम गौरव करते रहेंगे। उन की वीर-गाथाएं हमारी आने वाली संतति के लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत रहेंगी। आप के कार्यक्रम की सफलता की मैं कामना करता हूं।

भवदीय,
केदार नाथ साहनी

मुख्य कार्यकारी पार्षद
दिल्ली प्रशासन

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि भारतीय साहित्यकार संघ द्वारा गठित 'वीर वंदा वैरागी समिति' की ओर से अमर हुतात्मा बन्दा वैरागी का स्मृति दिवस आयोजित किया जा रहा है।

हमारी इस मंगलमय भारत-भूमि में ऐसी अनेक विभूतियां हुई हैं जिन्होंने मातृ-भूमि की, स्वधर्म की एवं पुरातन संस्कृति की रक्षार्थ अपने प्राण विसर्जन करने में अपूर्व आदर्श स्थापित किये हैं। इन सब में प्रातः स्मरणीय बन्दा वैरागी का जाज्वल्यमान आदर्श सर्वाधिक प्रेरणा-प्रद है।

मैं उस महान् व्यक्तित्व को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए यह कामना करता हूं कि हमारे नवयुवक इस प्रेरणापुञ्ज से उच्च आदर्श का संकल्प ग्रहण करें।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ।

विजयकुमार मलहोत्रा

डा० राम लाल वर्मा
कार्यकारी पार्षद्
दिल्ली प्रशासन

भारतीय साहित्यकार संघ के द्वारा गठित "वीर बन्दा वैरागी" समिति की ओर से आपने हुतात्मा बन्दा वैरागी को श्रद्धांजलि देने का कार्यक्रम बनाया है, उसके लिए आपको बधाई देता हूं। ईश्वर से प्रार्थना है कि आपका यह कार्यक्रम सफल हो, जातीय जीवन के उत्थान एवं नयी पीढ़ी को प्रेरणा देने के लिए इस प्रकार के बलिदानियों के पर्व मनाना बहुत लाभदायक रहता है। संस्था का यह कार्यक्रम इस दृष्टि से श्लाघनीय है।

धन्यवाद,

भवदीय,
राम लाल वर्मा

डा० रामदत्त भारद्वाज
अध्यक्ष-भारतीय साहित्यकार संघ,
केन्द्रीय कार्यसमिति

—: संदेश :—

गतवर्ष की भांति इस वर्ष भी "वीर बन्दा वैरागी-समिति" "वीर बन्दा वैरागी-सिद्धि एवम् साध्य" की दूसरी पुष्पाञ्जलि प्रस्तुत कर रहीं है। यह प्रयास भले ही स्वल्प साधनों और प्रभावों से प्रेरित है परन्तु उसका जातीय संरचना में मौलिक योगदान सर्वथा सिद्ध है। समिति के सदस्यों और संयोजक श्री सुन्दरदास को मैं हार्दिक बधाई देता हूं कि इन लोगों ने अपने राष्ट्रीय दायित्व को पहचाना है और समय के अनुरूप अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं।

भारतीय साहित्यकार संघ की अनेक समितियाँ अनेक दिशाओं में क्रियाशील हैं। वर्तमान राजनीति की अस्थिर शिराओं ने अपने तात्कालिक क्रियात्मकता से अस्थिर और असंतुलित वातावरण उत्पन्न कर दिया है। ऐसे समय में राष्ट्रीय और जातीय संरलना की ओर से अच्छे अच्छे लोगों का ध्यान हट गया है। ऐसे समय में समिति के लोग जो भी कष्टसाध्य कार्यक्रम संपादित करते हैं उसके लिए उन्हें एक बार पुन: धन्यवाद और बधाई देता हूं।

रामदत्त भारद्वाज

प्राक्कथन

नवीन राष्ट्रीयता की असंतुलित तथा निराधार विचारों से भ्रमित आत्महीन व्याख्याकारों ने हिन्दू वीरता और हिन्दू बलिदानों की ऐसी व्याख्याएँ प्रस्तुत करनी आरम्भ कर दी हैं कि त्याग तपस्या, बलिदान और जीवन के स्थायी तथ्यों की छीछा लेदर होने लगी है। विशेष रूप से गत २५ वर्षों में विभेदकारी राजन्य से ताल मेल बैटानेवाले कूटनीतिपरायण संघटकों ने राष्ट्र और तज्जनित राष्ट्रीयता के विभिन्न ध्येय बिन्दुओं को स्थान भ्रष्ट करने का कार्य किया है। स्वतंत्र भारत की राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाले हस्तक्षेप ने भी राष्ट्रीय संरचना के मूल्यों को अपनी सिद्धि की दृष्टि से विकृत करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इन सबके परिणाम स्वरूप भारतवर्ष की वर्तमान राष्ट्रीयता और उसके पोषक तत्त्वों की उपेक्षा होती जा रही है और हिन्दु तत्त्वज्ञान तथा जीवन संरचना का स्वरूप नष्ट होने लगा है। ऐसी स्थिति में समस्त घटनाओं का पुनरावलोकन एवम् अनुशीलन वैज्ञानिक और ऐतिहासिक स्तर पर अत्यन्त आवश्यक है। इसी आवश्यकता की ओर उन्मुख कुछ साहसी और सत्कर्तव्य परायण मित्रों ने "वीर बन्दा वैरागी-सिद्धि एवम् साध्य" की द्वितीय पुष्पाञ्जलि प्रकाशित करके एक मार्ग-चिन्ह खींचा है। इसमें लाभ कितना और कितना नहीं है यह सोचना कर्तव्यरत सहधर्मियों का कार्य नहीं है। कार्य का समवेत-संपादन संस्कार विशेष का परिणाम होता है। कार्यों के लाभ पर आंकड़े जोड़ना 'कार्यों के लाभखोर राजनीतिज्ञों' का कार्य है। सांस्कृतिक चेतना के उपासकों और लाभखोर राजनीतिज्ञों में सदैव अन्तर रहा है और रहेगा।

प्रातः स्मरणीय वीर बन्दा वैरागी हिन्दू जाति के उद्धारकों में संपूज्य हैं अतः उनको स्मरण करना हम सबका पावन धर्म है।

—मोहन लाल श्रीवास्तव

वीर बन्दा वैरागी श्रद्धाजलि दिवस

(१५ नव० १९६९) का संक्षिप्त विवरण

सुन्दरदास—संयोजक

शनिवार १५ नवम्बर को सायंकाल ५-३० बजे आर्य समाज अनार कली मन्दिर मार्ग नई दिल्ली में डा० लोकेशचन्द्र की अध्यक्षता में वीर बंदा वैरागी श्रद्धाञ्-जलि दिवस मनाया गया। इस समारोह में राजधानी तथा इसके बाहर के लगभग २५० प्रतिष्ठित नागरिको के अतिरिक्त बंदाई-सम्प्रदाय के बाबा जितेन्द्रपाल सिंह तथा भगवान सिंह हंस के साथ कई श्रद्धालु भी उपस्थित थ। कार्यक्रम का संचालन समिति के अध्यक्ष डा० वशिष्ठकुमार पुष्कर्णा सदस्य महानगर परिषद् की अनुमति से भारतीय सा० सं० के मुख्य संयोजक श्री मोहनलाल श्रीवास्तव ने किया। आरम्भ मं वैदिक मंत्रो के स्वस्ति का पावन उद्घोष श्री राजपाल शास्त्री 'जयेश' ने किया और तत्पश्चात् गगाशरण तृषित ने हिन्दी कविता में वीर बंदा वैरागी को श्रद्धांजलि दी। आर्यसमाज अनारकली का कक्ष गंभीर वातावरण से परिपूर्ण था। कार्यक्रम आरम्भ करने से पूर्व मोहनलाल श्रीवास्तव ने भारतीय साहित्यकार संघ की ओर से दो शब्द कहे जो इस प्रकार हैं।

हिन्दू संस्कृति का आंचल राजनीति परक विस्तार से धूमिल न हो जाए इस-लिए अनेक साधक-प्राणों का स्वतः प्रकाशवान होना परम आवश्यक है। साधन जब तक स्वतंत्र नहीं होता तब तक साध्य की उपलब्धि पवित्र रूप में संदिग्ध रहती है। इस भारत भूमि पर जितने भी परिवर्तन कारी चमत्कार हुए हैं, अथवा बाह्य रूप से जिन शक्तियों की विस्तृत चर्चाएं हुई हैं, उनके अन्तस्तल में अनेक साधकों का मौन तथा एकांत योगी स्वरूप ही स्तुत्य कारण रहा है।

भारतीय साहित्यकार संघ की भूनिका और उस पर आधृत कार्य का आधार बहुत कुछ चिन्तन है। यह सदैव अभीष्ट रहेगा कि स्थान-स्थान पर हिन्दू मान्यताओं तथा चिन्तन-भागीरथी की उपाससा में लेखनी-सिद्ध योगी बनकर अनेक बंधु उभरें और माता की "स्वर्णिम पूजा" का अनुष्टान करें। अतः इस दिशा में यह उपक्रम प्रशंसनीय है।

इसके बाद पुस्तक (वीर बंदा वैरागी सिद्धि एवं साध्य) के सम्पादक श्री अश्विनी कुमार वर्मा ने कहा :

किसी भी संस्कृति की सतत प्रवहमानता के लिए यह नितांत आवश्यक है कि उसके राजन्य और ब्राह्मण्य के मध्य आबद्धता बनी रहे। यह 'आबद्ध भाव' सम्मिश्र

हो या स्वतन्त्र, यह एक पृथक विश्लेष्य विषय है तथा गम्भीर चिन्तन की अपेक्षा रखता है। बंदा वैरागी, जो मूलतः एक वैष्णव थे, के विषय में इतिहासज्ञों का यही कथन है कि उसमें राजन्य और ब्राह्मण्य सम्मिश्र भाव से उपस्थिति थे। परंतु थोड़ा हटकर यदि यह कहा जाए कि उनके राजन्य और ब्राह्मण्य के ऊपर 'श्रमण भाव' अधिकार जमाए बैठा था तो अनुचित न होगा।

इतिहास स्वयं पुनरावृत्त हो उठता है। यदि ऐसा न हो तो किसी जाति के इतिहास काल में वे ही दोष पुनर्युक्त न हों और यदि वे न हों तो नियति को कौन स्वीकार करेगा, जो अपने 'शब्दभाव' में ही स्वयं व्याख्यात है। आज राष्ट्र का सबसे बड़ा गृहस्थ भी कमण्डलु से अपने को मुक्त नहीं कर सका है। सांख्य की नटी प्रकृति सम निरन्तर अटनशील व्यक्ति वेदांत और अपनी परिधि के 'राजन्य भाव' के मध्य कहीं भी सह अस्तित्व की विरोधिता का समाधान नहीं कर पाया है। यही काल की अपनी नियति है। बन्दा वैरागी विधर्मी लोगों को पराजित करके भी इसी स्वयं व्यख्यात नियति के परिणामस्वरूप पंजाब को स्थिर शासन नहीं दे पाया। कुछ ऐसी ही स्थिति आज देश में हिन्दू-हित प्रेरित संगठन वादियो की है। आज समाज आत्महत् और अन्तर्चेतना में पूर्णतः विश्रृंखलित होकर किसी राजन्यात्मक नेतृत्व की चाह से व्यथित है। इसका सबसे अधिक स्पष्ट प्रमाण आज की आत्मोद्विग्न राजनीति है। अशास्त्रीयश्रमण भाव राजन्य की आत्मवंचना बन बैठा है। नियति ने मानो इतिहास का प्रलेख समानान्तर भाव से स्थिर कर दिया हो।

इसके साथ ही जिन शिष्य-गुरुओं के साथ बन्दा वैरागी को सम्मान क्रम में बैठाया जाता है, उसकी प्रकृति का भी विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। अत्यंत संक्षेप में यदि कहा जाए तो कहना होगा कि पराजित जाति की अस्तित्व रक्षा के लिए ब्राह्मण्य पर राजन्व भाव आरोपित किया गया। 'राजन्यो वै अधि श्रेष्ठः' शायद वैदिक-ऋषि को ऐसी ही परिस्थितियों के लिए कहना पड़ा होगा। उस राजन्य की वर्चस्विता ही आत्म-प्रवंचित होकर शिष्य स्थान (सिक्ख स्थान) की मांग के रूप में आज बुद्धिहत राष्ट्र के समक्ष आ खड़ी हुई है।

अंत में बन्दा वैरागी पर इस छोटे से 'विचार-संकलन' के पाठकों से एक बात और कहना चाहूंगा। 'हिन्दू-सिक्ख' की एकता का स्वयं में श्लाध्य नारा कई दिशाओ से गूंजता सुनाई दे रहा है, पर यह नारा ज्यामितीय भ्रामिक बिन्दुओं की स्वीकृति के समान है। शिष्य (सिक्ख) इस राष्ट्र में अनादि काल से प्रवहमान आर्य संस्कृति या। हिन्दू-जीवन धारा की एक सशक्त बीचि है। यह ज्ञातव्य है कि उस बीचि को मूल धारा से अलग करने के लिए ही श्रीमान् मैकालिफ को पावन ग्रन्थ

'गुरु-ग्रंथ' साहब का अनुवाद कार्य सौंपा गया। सांस्कृतिक दृष्टि से आक्रान्त अंग्रेजी पढ़े-लिखे संभ्रांत शिष्यों (सिक्खों) को मैकालिफ के इस अनुवाद ने सरलता पूर्वक अन्य हिन्दू धाराओं से दूर जा फेंका। ब्रिटिश राजनीति की आखिरी शह, राष्ट्रीय राजनीति की बिसात पर, सम्पूर्ण हिन्दू जाति को स्व० नेहरू की नीतियों के रूप में खानी पड़ी। हिन्दू शिष्य का त्वरमाण प्रभेद उसी सह का परिणाम है। इसी कारण अपने मंच से गत दशक में भारतीय साहित्यकार संघ बारंबार इस बात को दोहराता आया है कि सांस्कृतिक आक्रमण का प्रत्याख्यान किए बिना यहां की राजनीति को स्वहित की ओर नहीं मोड़ा जा सकता।

भारतीय साहित्यकार संघ के इस आयोजन में निम्नलिखित बन्धुओं ने जो अपना अपूर्व योगदान दिया है उसके लिए मैं आभारी हूं—

उल्लेखनीय नाम हैं :—

डा० वशिष्ठ कुमार पुष्कर्णा, स० म० परिषद्

श्री नरसिंह दास भाटिया

,, बासुदेव महाशय	डा० देवराज ग्रोवर
,, हरभगवान अरोड़ा	श्री रमेश सहगल
,, सतपाल	,, लक्ष्मीनारायण
,, बहादुरचंद	,, रामस्वरूप डंग
,, बालकृष्ण थापर	,, वजीरचंद कोहली
,, देवराज चड्ढा	,, शिवनाथ तुली
,, धनराज मोगा	,, श्यामसुन्दर

मैं उन विद्वान लेखको का भी कृतज्ञ हूं, जिन्होंने अत्यधिक अल्पकाल में अपने विचारों को लिपिवद्ध करके साहित्यकार संघ को उस जाति पुरुष के चरणों में विचारात्मक श्रद्धांजलि अर्पित करने में सहायता प्रदान की है।

इसके बाद डॉ० बसिष्ठ कुमार पुष्कर्णा ने वीर बन्दा बैरागी दिवस के स्वागताध्यक्ष और समिति के संरक्षक श्री मदनलाल पसरीचा का परिचय दिया तत्पश्चात् श्री पसरीचा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि —

आज हिन्दू जाति पर महान् विपत्ति छाई हुई है, ऐसी संकट कालीन परि-स्थिति में विशुद्ध राष्ट्र-भक्त एवं हिन्दू धर्म के रक्षक वीर बंदा बैरागी को स्मरण करना वास्तव में राष्ट्रीय भावों का पुनः जागरण करना होगा। मैं इस समिति के सदस्यों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं कि इन्होंने इस आयोजन को करके बहुत अच्छा कार्य किया है, और मैं इनकी प्रेरणा, लगन और कार्य से बहुत प्रभावित हुआ हूं।



मदनलाल पसरीचा

मुझे आशा है कि भविष्य में भी इस प्रकार का आयोजन होगा और मैं अधिक से अधिक इस कार्य के लिए सहयोग दूंगा।

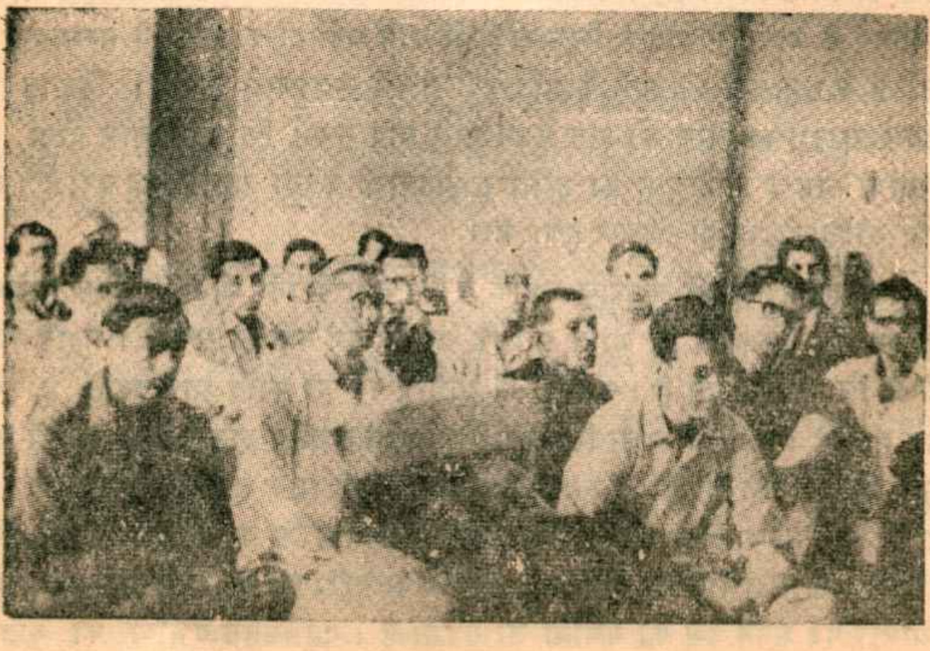
इसके बाद हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वैद्य गुरुदत्त ने वीर बंदा वैरागी पुस्तक का विमोचन किया और कहा कि बंदा के जीवन में असफलता क्यों आई ? यह जानने के बाद हम यदि राष्ट्रिय क्षेत्र में आगे बढ़ें तो कल्याण की सम्भावना हो सकती है, वरना नहीं। वैरागी के प्रति यही सच्ची श्रद्धांजली होगी। सिद्धांत को छोड़कर तात्कालिक लाभ की बात करने वाले यदि समझें कि उनसे लाभ होगा, तो यह सर्वथा भ्रम है। हिन्दुओं का मस्तिष्क सौदेबाजी करता रहा है, यह बुरा है। बंदा कृतघ्न सौदेबाजी का ही शिकार हुआ है।

संसद् सदस्य श्री बलराज मधोक ने वीर बंदा वैरागी की ऐतिहासिक विवेचना करते हुए कहा कि कोई भी क्रांति आर्थिक आधार पर नही हो सकती। महान् क्रांति रोटी के लिए नहीं होती है। संस्कृति के आधार पर जो क्रांति आगे बढ़ती है, वही सफल होती है। बन्दा ने आत्म विश्वास और राजन्य शक्ति द्वारा पंजाब की ही नही, सम्पूर्ण देश की सेवा की है। जिस सैनिक जागरण की आज हम बात करते हैं, उसे बन्दा ने बहुत पहले ही उत्पन्न कर दिया था। इस जागरण ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दुत्व के उदात्तीकरण का आधार प्रतिक्रिया नहीं, धर्म है, और इसी धर्म-भावना के आधार पर अपने देश को बचाया जा सकता है। यह कितने दुर्भाग्य की बात है

कि आज भारत वर्ष में अपने आपको हिन्दू कहना एक पाप की बात मानी जाती है । बंदा के लिए यही सच्ची श्रद्धांजली होगी कि हम भारत वर्ष को हिन्दू-राष्ट्र बनायें ।



भाषण देते हुए श्री बलराज मधोक



शेष पृ० ७६ पर

हिन्दू राज्य की स्थापना—
वीर बन्दा वैरागी का लक्ष्य

डा० ओम् प्रकाश

जन्म तथा वैराग्य

वीर सेनानी बन्दा का जन्म २७ अक्तूबर १६७० ई० को हुआ था। उनका बालकपन का नाम लछमन देव था। उनके पिता रामदेव राजपूत जाति के थे। उनका निवास स्थान पश्चिमी कशमीर में पुंछ राज्य में रजौरी था। लछमनदेव के पिता किसान थे, अत: वे भी पिता के कार्य में सहायता देते थे।। उन्हें शिकार करने का शौक था और वे बन्दूक चलाना भली प्रकार जानते थे। किंवदन्ती है कि एक बार लछमन देव ने बन्दूक से एक हिरनी का शिकार किया। वह गर्भवती थी और उसके गर्भ में दो बालक थे। इस दृश्य को देखकर लछमन देव का हृदय इतना क्षुब्ध हुआ कि वे संसार को त्याग कर वैरागी बन गये। अपना नाम माधोदास रखा और वे जानकी प्रसाद नाम के संन्यासी के शिष्य बन गये। संन्यासी के रूप में घूमते-घूमते एक बार माधोदास गोदावरी के तट पर नासिक पहुंचे। वहां उन्होंने अपने लिए एक कुटिया बनाई और तप करना प्रारम्भ किया। वहां लूनी या औघरनाथ नाम के तपस्वी ने उन्हें योग की क्रियाएं और जादू द्वारा अन्य व्यक्तियों को वशीभूत करना सिखाया। इसके पश्चात् वे गोदावरी के उद्‌गम स्थान की ओर चले और नन्देर पहुंचे। यह एक प्राचीन नगर था। इसका प्राचीन नाम तगर था। वहां माधोदास की बहुत प्रसिद्धि हो गई। लोगों का विश्वास था कि उन्हें बहुत सी ऋद्धि और सिद्धि प्राप्त हैं।

इस समय गुरु गोविन्द सिंह मुगल बादशाह बहादुर शाह के साथ दक्षिणापथ की यात्रा कर रहे थे। उनके साथ कुछ पैदल योद्धा और दो सौ या तीन सौ बर्छियों से सुसज्जित घुड़सवार थे। १७०७ ई० के श्रावण मास में गुरु गोविन्द सिंह नन्देर पहुंचे। उन्हें नन्देर का एकान्त वातावरण और स्थिति बहुत आकर्षक लगे। वे उस स्थान पर बैठ गये जहां बैठ कर माधोदास वैरागी तप किया करता था। गुरु गोविन्द सिंह ने माधोदास की एक बकरी को मारा और पका कर खा लिया। वैरागी के

स्थान पर बैठना ही अनुचित था फिर उसकी बकरी को मारना तो घोर पाप था। जब वैरागी ने गुरु गोविन्द सिंह से पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया ? तो गुरु ने कहा कि मैंने तुम्हारे आतिथ्य की बहुत प्रशंसा सुनी थी। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही मैंने ऐसा किया। वैरागी गुरु के उत्तर से पूर्णतया सन्तुष्ट हो गया और यह समझ गया कि वे कोई महापुरुष हैं। वैरागी ने कहा "मैं तो आपका दास हूं।" तभी से वैरागी बन्दा (दास) के साम से प्रसिद्ध हो गया।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

गुरु गोविन्द सिंह को यह स्थान इतना अकर्षक लगा कि वे वहीं रहने लगे। सिक्ख परम्परा के अनुसार गुरु गोविन्द सिंह ने बैरागी को अपने धर्म के सिद्धान्त बतलाये और अपने धर्म में अनुरक्त करके उसका नाम गुरु बख्श सिंह रखा, किन्तु सब लोग उसे बन्दा कहकर ही पुकारते थे। बैरागी ने सोचा कि गुरु गोविन्द सिंह ही उसके सच्चे गुरु हो सकते हैं, इसलिए उसने एक दिन गुरु गोविन्द सिंह से पूछा कि क्या मैं आप की कुछ सेवा कर सकता हूं ? गुरु ने बन्दा से कहा 'मैंने आतताइयों को नष्ट करके धर्म की स्थापना करने के लिए जन्म लिया है। क्या तुम इस कार्य में मेरी सहायता कर सकते हो ?' इस पर गुरु के आदेशानुसार पंजाब जाकर आततताइयों को नष्ट करने का वचन दिया। इस पर गुरु ने प्रसन्न होकर कहा कि तुमने अपने को मेरा दास कहा है, किन्तु मेरे आशीर्वाद से तुम इस संसार में सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करोगे। यह कह कर गुरु ने बन्दा को पांच बाण दिये और कहा कि 'जब तक तुम संयमी रहोगे तुम्हारी कीर्ति दिन दूनी और रात चौगुनी होगी।'[1]

गुरु गोविन्द सिंह की नन्देर में एक पठान ने हत्या कर दी। संभवतः इस पठान को सरहिन्द के गवर्नर वजीर खां ने गुरु को मारने के लिए भेजा था। गुरु की मृत्यु १८ अक्तूबर १७०८ ई० को हुई। सेनापति ने गुरु की दिनचर्या का पूरा वर्णन किया है किन्तु उसने बन्दा के सिक्ख धर्म में दीक्षित करने का लेशमात्र भी वर्णन नहीं किया है, जब कि सिक्ख परम्परा के अनुसार गुरु गोविन्द सिंह ने नन्देर पहुंचते ही पहले दिन ही बन्दा को सिक्ख बना लिया था।[2] इस से हम रोज के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि बन्दा गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु से पूर्व भी अपने वीरता के कार्यों में संलग्न था और संभवतः गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात्

---

1 मैकॉलिफ खण्ड ५ पृ० २३६–२३८

2 बैनर्जी पृ० १५१ देखिये सेनापत-गुरु सभा

नेता विहीन सिक्ख स्वयं उसकी पताका के नीचे एकत्रित हो गये।'[3] संभवतः बन्दा का महत्व बढ़ाने के लिए सिक्ख धर्म में दीक्षित करने की कथा पीछे से जोड़ दी गई।

बैरागी का सैन्यसंचालन संकल्प

गुरु की मृत्यु के पश्चात् बन्दा ने सिक्खों का नेतृत्व किया किन्तु उसे सिक्खों ने स्वीकार नहीं किया। यदि वह सिक्ख धर्म में दीक्षित हो गया होता तो उसे गुरु क्यों न माना जाता? कुछ इतिहासकार भी उसे झूठा गुरु कहते हैं। संभव है खालसा ने ही बन्दा को अपना नेता चुना हो।[4]

बन्दा ने मुगल अधिकारियों के हिन्दुओं पर किये गये सब अत्याचारों को देखा था। उसने पंजाब में, जहां का वह रहने वाला था और महाराष्ट्र में, जहां वह अब रह रहा था देखा कि हिन्दुओं के इन अधिकारियों के विरुद्ध किये सभी प्रयत्न निष्फल रहे थे। जब गुरु गोविन्द सिंह ने पंजाब के दिल हिलाने वाले अत्याचारों का वर्णन बन्दा को सुनाया तो यह ३८ वर्ष का नवयुवक देश और जाति की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गया। उसने गुरु गोविन्द सिंह के जीवन के लक्ष्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया। पंजाब की जनता को इस समय बंदा जैसे नेता की ही आवश्यकता थी। जैसे ही १९०७ ई० के प्रारम्भ में बंदा पहुंचा, वहां के अनेक हिन्दू और सिक्ख उसके नेतृत्व में मुसलमानों के अत्याचार के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार हो गए। तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकार खफ़ी खां ने स्वयं लिखा है 'दो या तीन महीने में ही लगभग पांच हज़ार अश्वारोही और आठ हज़ार पैदल योद्धा उसके साथी हो गये। उसकी सेना की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी और बहुत सा लूट का माल इन योद्धाओं के हाथ लगा। थोड़े दिन पश्चात् ही लगभग उन्नीस हज़ार सशस्त्र योद्धा लूट और अत्याचार के कार्य में जुट गये'।[5]

बन्दा ने पंजाब पहुंचने से पहले सारे सिक्खों को कहला भेजा कि वह सरहिन्द के उस फ़ौजदार वजीर खां और उस के नायब हिन्दू सूचानन्द को दण्ड देने के लिए आ रहा है, जिन्होंने गुरु गोविन्द सिंह के दो पुत्रों को जीवित दीवार में चिनवाया था और जिन के कारण गुरु की माता को आजन्म कारागृह में रहना

---

3 बैनर्जी पृ० १५२ देखिये रोज-ग्लासरी आफ पंजाब ट्राइब्स एंड कास्ट्स खण्ड १ पृ०६९८ टिप्पणी ५

4 आर्चर पृ० २०९

5 खफीखां २, ६३२ उद्धरण हरिराम पृ० ४६ टि० १

पड़ा था। उसने यह भी घोषणा की कि वह उन पर्वतीय राजाओं को भी दण्ड देगा, जिन्होंने गुरु के साथ दुर्व्यवहार किया था। कैथल के निकट उसने एक सरकारी खज़ाने को जो दिल्ली भेजा जा रहा था लूट लिया और उसे अपने अनुयाइयों को बांट दिया। यह उसकी सफलता के अभियान में शुभ श्री गणेश था।

समाना के बिवासी जलालुद्दीन ने गुरु तेगबहादुर का वध किया था। इसलिए २६ नवम्बर १७०६ ई० को प्रातः बन्दा ने समाना पर आक्रमण किया। बन्दा के योद्धाओं ने सूर्यास्त से पहले ही समाना के भव्य भवनों को मिट्टी में मिला दिया। लगभग १०,००० मुसलमान मारे गये और अपार धन राशि बन्दा के हाथ लगी।[6] इसके पश्चात् अनेकों हिन्दू और सिक्ख प्रतिदिन बड़ी संख्या में बन्दा के अनुयायी हो गये। इतनी बड़ी सेना की सहायता से बन्दा ने बड़ी सरलता से घूरम, थस्का, कजपुरा, शाहाबाद, मुस्तफाबाद, अम्बाला, कतूरी छत और बनूर के कट्टरपंथी मुसलमानों को दण्ड दिया। कपूरी का शासक कदमुद्दीन अपने भोग विलास के लिए हिन्दू जनता पर अनेक अत्याचार करता था इसलिए बंदा ने उसके भवनों में आग लगा दी और उसका समस्त धन लूट कर अपने साथियों में बांट दिया।

सधौरा के हिन्दुओं ने बंदा से शिकायत की कि वहां का मुस्लिम शासक उन्हें धार्मिक संस्कार करने की अनुमति नहीं देता है। यहां तक कि अन्त्येष्टि संस्कार भी नहीं कर सकते। उनके घरों के सामने गोहत्या की जाती है और गायों का रक्त और आंतें गलियों में पड़ी छोड़ दी जाती हैं। वहां के शासक उस्मान खां ने सैयद बदरुद्दीन शाह नाम के मुसलमान फकीर की बड़े अत्याचार करके हत्या की थी, क्योंकि इस फकीर ने मंगनी के युद्ध में गुरु गोविन्द सिंह की सहायता की थी। इसलिए बंदा ने सधौरा पर आक्रसण किया। वहां के अत्याचार पीड़ित किसानों ने बंदा की सहायता की। बंदा ने वहां के बदमाश मुसलमानों की बड़ी संख्या में एक स्थान पर हत्या की। यह स्थान अब कतलगढ़ी कहलाता है। सधौरा की विजय के पश्चात् बंदा ने मुखलिसगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया।

सरहिन्द की विजय के समय तीन प्रकार के योद्धाओं ने बंदा का साथ दिया। गुरु गोविन्द सिंह के शिष्य, जो देश और जाति की रक्षा के लिए लड़ रहे थे। उन राजाओं की सेना, जो बंदा के आन्दोलन से सहानुभूति रखते थे और वे

---

6 तेजा सिंह गण्डा सिंह पृ० ८१

योद्धा जो व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण या लूट का माल पाने की इच्छा से उसका साथ दे रहे थे। खफी खां के अनुसार इस समय बंदा की सेना में लगभग ४० हज़ार योद्धा थे। किन्तु बंदा के पास न तोपखाना था न हाथी और न पर्याप्त घोड़े। वज़ीर खां की सेना पूर्णतया सुसज्जित थी और हिसार, लाहौर, अमीनाबाद आदि के सूबेदारों ने अपनी सेनाएं उसकी सहायता के लिए भेजी थीं। उसके पास अनेक तोपें और हाथी थे। इस पर भी हिन्दुओं ने समस्त मुस्लिम सेना को नष्ट कर दिया। वज़ीर खां मारा गया और भारतीय सेना की विजय हुई। सिक्खों के हाथ लगभग दो करोड़ का लूट का माल लगा। बंदा ने बाजसिह को सरहिन्द का सूबेदार नियुक्त किया। अनेक मुसलमान भी स्वेच्छा से सिख बन गये। बंदा ने उन सब व्यक्तियों पर जो उसके सम्पर्क में आये ऐसा जादू सा फेरा कि वे सभी उसके अनुयायी हो गये।

विजय तथा राजधानी स्थापना

बंदा ने मुखलिसपुर को अपनी राजधानी बनाया और उसका नाम लोहगढ़ रखा। उसने अपने नाम के सिक्के चलाये। राजकीय दस्तावेज़ों पर अपनी मुद्रा लगाई और सरहिन्द की विजय से ही अपने राज्य का सम्वत् चलाया। उसको सुव्यस्थित शासन प्रबन्ध स्थापित करने का समय न मिला किन्तु उसने ज़मींदारों के अत्याचारों से किसानों को बचाने के लिए अपने विजित प्रदेशों में ज़मींदारी समाप्त कर दी और किसानों को भूमि का स्वामी घोषित किया।[7]

बंदा की इन विजयों का हिन्दू जनता पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि वे सभी उसे देश और धर्म का रक्षक समझने लगे। वे भारत से मुगल राज्य को जड़ से उखाड़ फेंकने में जुट गए। जहां कहीं भी मुसलमान शासक अत्याचार करते वे वहीं पहुंच जाते। चाहे कोई भंगी या चमार ही क्यों न हो यदि वह एक बार बंदा का अनुयायी बन जाता तो उसके गांव के ऊंची जाति के भी समस्त निवासी उसका स्वागत और सम्मान करते।[8]

जब बंदा को ज्ञात हुआ कि देवबन्द के फौजदार जलालखां ने अनेक हिन्दुओं को जेल में डाल दिया है और वह उन पर अत्याचार कर रहा है तो वह यमुना नदी को पार करके सहारनपुर पहुंचा और उस पर अधिकार कर लिया।[9]

7 तेजा सिंह गण्डा सिंह पृ०८२–८८

8 इर्विन १, ९८–९९

9 इर्विन १, १०१

फिर उसने बेहत के पीरज़ादों के विरुद्ध अपनी सेना भेजी, क्योंकि वे हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार कर रहे थे और सार्वजनिक स्थानों पर गो वध करते थे। सारे पीरज़ादे मारे गये और बन्दा की सेना ने बेहत पर अधिकार कर लिया। २१ जुलाई १७१० ई० को ननौता के शेखज़ादों ने बन्दा की सेना का विरोध किया। ननौता के गूजरों ने जिन पर शेखज़ादों ने अनेक अत्याचार किये थे बन्दा की सहायता की। इस युद्ध में ३०० शेखज़ादे मारे गये और बन्दा की सेना ने ननौता को मिट्टी में मिला मिया। तभी से यह नगर 'फूटा शहर' कहलाता है।[10] इसके पश्चात् बन्दा की सेना ने जलालाबाद का घेरा डाला, किन्तु कृष्णा नदी में बाढ़ के कारण वे उस नगर पर अधिकार न कर सके। इस अभियान के फलस्वरूप दिल्ली तक समस्त मुगल शासित प्रदेशों की जनता भय से कांपने लगी। मुगल सम्राट् बहादुरशाह दक्षिण भारत की विजय में व्यस्त था और उसके भयभीत अधिकारियों का इतना साहस न हुआ कि बन्दा के विरुद्ध कोई भी कदम उठाते। जब बहादुरशाह दक्षिण से लौटा तो वह बिना दिल्ली में रुके लोहगढ़ पहुंचा और उसने दिसम्बर १७१० ई० में उस नगर का घेरा डाला।[11]

सरहिन्द की विजय के पश्चात् बन्दा ने जालंधर दोआब की जनता को मुगलों की दासता से मुक्त करने का विचार किया। जालंधर के सूबेदार शमस खां ने एक लाख योद्धा एकत्रित किए।[12] बन्दा तुरन्त गंगा यमुना के दोआब से पंजाब पहुंचा और १२ अक्तूबर १७१० ई० को उसकी सेना ने राहों के किले पर अधिकार कर लिया। बिना किसी कठिनाई के उसने समस्त दोआब पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् बन्दा ने बटाला और कलानौर से शाही कर्मचारियों को निकाल बाहर किया और अपने अधिकारी नियुक्त किये। पठानकोट तक उसका अधिकार हो गया। बन्दा की कुछ सेना लाहौर जा पहुंची वहां के सूबेदार सैयद असलम खां को उसका विरोध करने का साहस न हुआ।[13] तब वहां के मुल्लाओं ने धर्म युद्ध की घोषणा की। उनकी सेना ने बन्दा की सेना का घेरा डाला, किन्तु एक रात को बन्दा के योद्धा मुगल सेना को चीर कर बाहर निकल गये और मुल्ला लोग हाथ मलते रह गए। लाहौर पहुंच कर उन्होंने हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार

---

10 तेजा सिंह गण्डा सिंह पृ० ९०

11 इर्विन १, १११

12 इर्विन १, ९९

13 इर्विन १, १०३

किये । परन्तु अन्त में बन्दा की विजय हुई और मझा और रियाड़ के समस्त प्रदेश पर उसका अधिकार हो गया।[14] इस प्रकार बन्दा लाहौर से पूर्व के समस्त पंजाब का स्वामी हो गया।[15]

बहादुरशाह ने पंजाब पहुंचने से पूर्व दिल्ली और अवध के सूबेदारों और मुरादाबाद और इलाहाबाद के फौजदार और नाज़िम को पंजाब पहुंचने का आदेश दिया था। उसने ८ सितम्बर १७१० ई० को सब हिन्दू कर्मचारियों को दाढ़ी मुंडवाने को आज्ञा दी, जिस से कोई सिक्ख उन में छिपा न रहे।[16] पहली मुठभेड़ सधौरा में हुई। बन्दा की सेना ने एक बार मुगल सेना में त्राहि-त्राहि मचा दी।[17] जब कुछ अन्य सेना वहां पहुंची तो मुगल सेना को कुछ साहस हुआ। बन्दा बड़ी सफाई से अपनी सेना सहित वहां से निकलकर लोहगढ़ पहुंचा और मुगल सेना कई महीनों तक उस गढ़ पर अधिकार न कर सकी। जब बन्दा के योद्धाओं की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई तो उन्होने घोड़ों और अन्य पशुओं का मांस खाकर निर्वाह किया। अन्त में उन्होंने गढ़ को छोड़ कर मुगल सेना को चीर कर भाग निकलने का निश्चय किया। गुलाब सिंह ने बन्दा की पोशाक धारण की और १० दिसम्बर १७१० की रात को बन्दा अपने योद्धाओं सहित वहां ने नाहन की पहाड़ियों की ओर भाग निकला।[18] जब बादशाह को इस बात का पता चला तो उसने नाहन के राजा भूप प्रकाश को बन्दी बनाकर दिल्ली भेजने का आदेश दिया।

शक्ति संचयन

पर्वतीय प्रदेश में पहुंच कर बन्दा ने अपनी शक्ति बढ़ाई। ४ जून १७११ ई० को उसने जम्मू के फौजदार को पराजित किया। बादशाह ने सभी सिक्खों और उन से सहानुभूति रखने वाले हिन्दुओं का वध करने की आज्ञा दी। १८ फरवरी १७११ को बादशाह की मृत्यु हो गई। उत्तराधिकार के लिए झगड़े प्रारम्भ हो गए। बन्दा ने इस अवसर का लाभ उठा कर अपनी शक्ति बढ़ा ली और फिर सधौरा, लोहगढ़ आदि उन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया, जिन पर मुगल

---

14 तेजा सिंह गण्डा सिंह ९२
15 मैकॉलिफ २४६
16 इर्विन १, ११२
17 तेजा सिंह गण्डा सिंह ८३
18 इर्विन १, ११६

शासकों ने इस बीच अधिकार कर लिया था। जब फर्रुख सियर बादशाह बना तो उसने फरवरी १७१३ ई० में कश्मीर के सूबेदार अब्दुल समद खां को पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया किन्तु वह बन्दा के अनुयाइयों का दमन करने में पूर्णतया सफल न हुआ।[19] उन्हें अक्तूबर १७१३ ई० में सधौरा और लोहगढ़ तो छोड़ने पड़े, किन्तु बन्दा जम्मू की पहाड़ियों में पहुंच कर फिर अपनी शक्ति बढ़ाने में लग गया।

जब १७१५ ई० के प्रारम्भ में बन्दा मैदानी प्रदेश में आया तो उसने फिर कलानौर और बटाला पर अधिकार कर लिया। जब मुगल सेना ने बन्दा की सेना पर आक्रमण किया तो उसने बीरता से उसका सामना किया और लगभग उसे पराजित कर दिया, किन्तु अन्त में गुरदास नंगल में खाद्य सामग्री की कमी के कारण और विनोद सिंह से विरोध होने के कारण बन्दा मुगल सेना का प्रतिरोध करने में असफल रहा और उसे उस के साथियों सहित बन्दी बना लिया गया।[20] बन्दा को पहले लाहौर ले जाया गया और फिर उसे लोहे की जंजीरों में बांध कर और एक पिंजड़े में बन्द करके दिल्ली ले जाया गया। जब दिल्ली में बन्दा के साथियों का जलूस निकाला गया तो सभी पूर्णतया प्रसन्न थे। उन्हें अपनी मृत्यु का लेश मात्र भी भय न था। वे कहते थे हमें मृत्यु का भय न पहले था न अब है। हम भूख के कारण बन्दी बनाए गए हैं नहीं तो हमें कौन हरा सकता था।[21]

५ मार्च १७१५ ई० से प्रतिदिन बन्दा के सौ साथियों की हत्या की जाती थी। वध से पहले सब से कहा जाता था कि यदि तुम मुसलमान बन जाओ तो तुम्हें जीवित रहने दिया जाएगा, किन्तु बन्दा के एक भी साथी ने अपना धर्म छोड़ना स्वीकार न किया। एक युवक की माता ने बादशाह से अपने पुत्र के लिये यह कह कर क्षमा याचना की कि वह बन्दा का अनुयायी नहीं है किन्तु उसे तो बन्दा के साथियों ने बन्दी बना लिया है। किन्तु उस युवक ने कहा कि मेरी माता झूठ बोल रही है। उसने सहर्ष बन्दा के अन्य साथियों के साथ धर्म और देश के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दिया।[22] इर्विन ने लिखा है कि सभी भारतीय और यूरोपीय इस बात पर एकमत हैं कि बन्दा के अनुयाइयों का धैर्य और दृढ़

---

19 इर्विन १,३०८
20 इर्विन १,३१५
21 इर्विन १,३१७
22 इर्विन १,३१८

संकल्प इस परीक्षा के समय अद्वितीय था।[23] उन्हें मृत्यु का लेशमात्र भी भय न था। वे पहले प्राणदण्ड प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से होड़ लगाते थे। यह घृणित कार्य एक सप्ताह तक चलता रहा। बन्दा की बारी तीन मास पश्चात् १६ जून १७१६ ई० को आई। जल्लाद ने उसके बालक पुत्र के टुकड़े-टुकड़े करके उस का मांस बन्दा के मुख में ठूंस दिया, किन्तु बन्दा लेश मात्र भी विचलित न हुआ। मुहम्मद अमीन खां ने जब बन्दा से पूछा कि तुम इतने सज्जन हो फिर तुमने संसार के प्राणियों को दुःखी करके अपने ऊपर यह आपत्ति क्यों मोल ली है? बन्दा ने बड़े धैर्य के साथ उत्तर दिया 'जब संसार में कुछ मनुष्य सीमा से बाहर चले जाते हैं, तो ईश्वर इन दुष्टों को दण्ड देने के लिए मुझ जैसे प्राणी को जन्म देता है।[24] पहले बन्दा की सीधी आंख निकाली गई फिर बांई, फिर उसके हाथ पैर काटे गए। आग में तपाई हुई लाल संडासी से उसका मांस चीरा गया और अन्त में उसका सिर काट दिया गया।[25] बन्दा अन्त तक निश्चल रहा। इस प्रकार उस वीर सेनानी का नश्वर शरीर समाप्त हुआ, जिसने हिन्दू जाति में नव जीवन का संचार करके आतताइयों को दण्ड देने का बीड़ा उठाया था।

मुसलमान इतिहासकार

मुसलमान इतिहासकारों ने बन्दा की कटु आलोचना की है, क्योंकि उसने मुगल साम्राज्य की शक्ति को आमूल नष्ट करने का संकल्प किया था। उनके वर्णन अतिरंजित होने स्वाभाविक हैं। लतीफ ने लिखा है कि बन्दा ने अहमदशाह के सुन्दर मकबरे को पूर्णतया नष्ट कर दिया जबकि नारंग के अनुसार यह मकबरा आज तक पूर्णतया सुरक्षित पूर्ववत् विद्यमान है।[26] उनके अनुसार बन्दा एक लुटेरा था। जिसने अनेक निर्दोष व्यक्तियों की हत्या की। खफी खां ने लिखा हैं कि ये पापी कुत्ते लूट, मार काट और बड़े छोटे सभी परिवारों के बालकों को बन्दी बनाने और उन्हें पृथ्वी पर पटक कर मारने और गर्भवती स्त्रियों को चीरने, मकानों में आग लगाने और निर्धन और धनी सभी का सर्वनाश करने में लग गए।[27] किन्तु उसने भी बन्दा की वीरता की प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि मुसलमान सेनाएं बड़ी कठिनाई से काफिरों के आक्रमणों का सामना कर सकीं······धन, सामान, घोड़े, हाथी सब काफिरों

---

23 इर्विन १, ३१७–३१८
24 मैकालिफ पृ० २५३
25 इर्विन १, ३१६
26 तेजा सिंह गण्डा सिंह ८५
27 इलियट ७, ४१५

के हाथ में चले गए और इस्लाम की सेना का एक भी योद्धा ऐसा न बचा, जिसके पास पहने हुए कपड़े और अपने शरीर के अतिरिक्त कुछ भी बचा हो।[28]

कुछ सिक्ख लेखकों ने उस सिक्ख परम्परा को एक ऐतिहासिक सत्य माना है, जिसके अनुसार गुरु गोविन्द सिंह ने नन्देर पहुंचते ही पहले ही दिन बन्दा को सिक्ख धर्म में दीक्षित किया था। उन्होंने बन्दा को सिक्ख धर्म का रक्षक बतलाया है और कहा है कि जिस दिन से गुरु गोविन्द सिंह ने बन्दा को खालसा में प्रविष्ट किया था। मृत्यु पर्यन्त वह गुरु के लक्ष्य को पूरा करने में कटिबद्ध रहा। उसके सिक्कों और मुहर पर गुरु नानक और गुरु गोविन्द सिंह के नाम अंकित थे। वह जीवन भर सिक्ख धर्म के नियमों का पालन करता रहा। उसने अनेक हिन्दुओं और मुसलमानों को सिक्ख बनाया।[29] उपर्युक्त वर्णन में भी कुछ पक्षपात की झलक मिलती है।

यूरोपीय इतिहासकारों ने भी सिक्ख परम्पराओं के आधार पर बन्दा को सिक्खों का नेता ही स्वीकार किया, किन्तु उन्होंने कठिन से कठिन परिस्थिति में बन्दा के अनुयाइयों के धैर्य, साहस और वीरता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।[30] उदाहरण स्वरूप मैकालिफ ने बन्दा और मुहम्मद अमीन खां के वार्तालाप का बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन किया है, जिसमें अपनी मृत्यु से पूर्व बन्दा ने निर्भीक शब्दों में कहा था कि जब पाप अपनी सीमा पर पहुंच जाता है तो ईश्वर पापियों को दण्ड देने के लिए मुझ जैसे प्राणियों को भेजता है।[31]

निष्पक्ष निर्णय

एक निष्पक्ष इतिहास लेखक बन्दा को एक सिक्खों के नेता के रूप में ही स्वीकार नहीं कर सकता। हम पहले ही कह आए हैं कि सेनापति ने नन्देर में गुरु गोविन्द सिंह की पूरी दिनचर्या का वर्णन किया है, किन्तु उसमें बन्दा के सिक्ख धर्म में दीक्षित करने का कोई जिक्र नहीं है। रोज का निष्कर्ष सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है कि गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात् नेता विहीन सिक्ख स्वयं बन्दा के झण्डे के नीचे इकट्ठे हो गए।[32] वास्तव में बन्दा का उद्देश्य समस्त हिन्दू जनता को मुगल दासता से मुक्त करना था। उसने अपने आन्दोलन को व्यापक रूप

---

28 इलियट ७, ४१४–४१५

29 इर्विन १,११०, तेजा सिंह गण्डा सिंह १०४

30 इर्विन १, ३१५, ३१७, ३१८

31 मैकालिफ २५३–५४

32 देखिये टिप्पणियां २ व ३

देने के लिए अपने युद्ध का नारा 'वाह गुरु की फतह' के स्थान पर 'फतह धर्म' या 'फतह दर्शन' घोषित किया।[33] सिक्खों ने भी उसे अपना गुरु स्वीकार नहीं किया, अंग्रेज इतिहासकार भी बन्दा को 'झूठा गुरु' लिखते हैं।[34] उसने अपने घोषणापत्र में अपने अनुयाइयो को मांस, प्याज आदि न खाने की आज्ञा दी थी। ये नियम हिन्दू धर्म में पाए जाते हैं न कि सिक्ख धर्म में। चाहे सिक्ख इतिहासकार उसे बन्दा सिंह बहादुर[35] ही लिख कर सिक्ख सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहें। वह वीर सेनानी आज तक बन्दा वैरागी के नाम से प्रसिद्ध है। वैरागी हिन्दू धर्म में संन्यासियों के एक वर्ग को कहते हैं न कि सिक्ख धर्म में। सिक्खों में भी बन्दा के हिन्दू धर्म के इन सिद्धान्तों में आस्था होने के कारण दो वर्ग बन गए थे। तत् खालसा वे थे, जो अपने को गुरु गोविन्द सिंह का शिष्य मानते थे और बन्दा सिक्ख वे थे जो बन्दा को अपना गुरु मानते थे।[35] उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वीर सेनानी बन्दा केवल सिक्खों का ही नेता न था, वह समस्त हिन्दू जाति का नेता था। उसने अत्याचारी मुगल शासकों के विरुद्ध हिन्दू जनता को संगठित करके उसे देश प्रेम की भावना से भर दिया। उसने भारत में हिन्दू राज्य स्थापित करने का लक्ष्य अपने सामने रखा था, किन्तु मुगल राज्य की नींव अभी काफी मजबूत थी। एक निर्भीक व्यक्ति जनता में साहस की तो भावना भर सकता है, किन्तु वह किसी शक्तिशाली साम्राज्य को उखाड़कर नहीं फेंक सकता। इसीलिए वीर सेनानी बन्दा अपने लक्ष्य की प्राप्ति में असफल रहा। किन्तु उसके साहसी कार्य जब तक भारत राष्ट्र जीवित है भविष्य में सदा ही राष्ट्रीय वीरों को प्रेरणा प्रदान करते रहेंगे। उसका बलिदान व्यर्थ नहीं हुआ, उसने भारतीय जनता में अत्याचार का प्रतिरोध करने की भावना कूट-कूट कर भर दी। जब उपयुक्त अवसर आया कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे राष्ट्र कवियों ने इस वीर सेनानी का गुण गान किया और जनता को राष्ट्र रक्षा के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की शिक्षा दी।

---

33 मैकालिफ २ग्र०, कनिंघम ८० टिप्पणी

34 इर्विन १, ८३

35 गण्डा सिंह, 'बन्दासिंह बहादुर'

36 हरिराम ४९

सन्दर्भ ग्रन्थ

१) इलियट और डॉसन—ए हिस्ट्री आफ इण्डिया–खण्ड ७ 'इलाहाबाद–१९६४
२) विलियम इर्विन—लेटर मुगल्स खण्ड १ कलकत्ता
३) मैक्स आर्थर मैकालिफ—दि सिक्ख रिलिजन खण्ड ५ आक्सफोर्ड १९०९
४) जे० डी० कनिंघम—ए हिस्ट्री आफ दि सिक्ख्स दिल्ली १९५५
५) जे० सी० आर्चर—दि सिक्ख्स प्रिंस्टन युनिवर्सिटी प्रेस १९४६
६) हरिराम गुप्त—स्टडीज़ इन लेटर मुगल हिस्ट्री आफ दि पजाब, लाहौर १९४४
७) इन्दुभूषण बैनर्जी—इवाल्यूशन आफ दि खालसा खण्ड २–कलयत्ता १९४७
८) तेजासिह और गण्डासिह—ए शार्ट हिस्ट्री आफ दि सिख्स, मद्रास १९५०
९) गण्डासिह—बन्दासिह बहादुर, अमृतसर १९३५

क्रान्तिकारी वीर बंदा वैरागी
उसका सिखत्व उसका राष्ट्रिय बलिदान

कृष्ण कुमार शर्मा

वीर बन्दा वैरागी भारतीय इतिहास के उन उज्ज्वलतम नक्षत्रों में से एक हैं जिसका उदय एक महान क्रान्तिकारी घटना थी और मुस्लिम शासन के अस्तित्व को एक गम्भीर चुनौती थी। वीर बन्दा वैरागी का उदय वास्तव में एक नक्षत्र की भांति ही है। (Meteoric rise) जिसने हिन्दू जाति को एक नवीन आत्मविश्वास, प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की और एक महान बलिदानी के रूप में अमर हो गया। मुस्लिम अत्याचार के विरुद्ध उसने हिन्दू और सिक्खों को संगठित किया एवं अत्याचारी शासन को समाप्त करने के स्वप्न को साकार करने का दृढ़ संकल्प किया।

वीर बन्दा वैरागी के विषय में कुछ विवाद सामान्य रूप से प्रचलित है कि क्या बन्दा अमृत चखकर सिक्ख धर्म में दीक्षित हो गया था अथवा नहीं? यह एक अत्यन्त ही विवादास्पद विषय है और अधिकांश लेखक यही मानते हैं कि यह सिक्ख था, परन्तु कुछ तथ्य ऐसा भी संकेत करते प्रतीत होते हैं कि बन्दा ने सिक्खों का नेतृत्व अवश्य ग्रहण किया और अपना बलिदान किया, परन्तु संभवतः वह पूर्ण रूपेण सिक्ख न हो। उदाहरणार्थ, वह प्रारम्भ से एक राजपूत एवं हिन्दू वैरागी था। प्रारम्भ में विष्णु का उपासक था। पूर्णरूपेण शाकाहारी था। भाई करम सिंह ने यह निश्चित रूप से माना है कि बन्दा ने अमृत नहीं चखा था। कनिंघम भी इस महान घटना का वर्णन नहीं करता है। भाई सोहन सिंह ने निश्चित रूप से यह मत अभिव्यक्त किया है कि बन्दा यद्यपि सिक्ख धर्म का अनुयायी था, परन्तु उसे अमृत नहीं चखाया गया था। भाई ज्ञान सिंह ज्ञानी का यह कथन कि गुरु गोविन्द सिंह जी ने बन्दा को सिक्ख बनाकर उसका नाम बन्दा सिंह रख दिया। स्वयं कतिपय सिक्ख लेखकों की दृष्टि में सत्य नहीं। भाई सोहन सिंह शिर-ए-बाबा ने लिखा है, यह हास्यास्पद प्रतीत होता है। यह स्वयं सिद्ध है और किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं कि सिक्ख सदैव सम्पूर्ण नाम से पुकारे जाते हैं। आधे

नाम से पुकारना अनादर सूचक है……फिर बन्दा के स्तर का एक नेता कैसे सहन कर सकता था कि उसे आधे नाम से पुकारा जाए और सिक्ख भी कैसे अपने नेता का इस प्रकार अनादर कर सकते थे।

सिक्ख साखियों में भी इस प्रकार के वर्णन उपलब्ध होते हैं कि जब गुरु गोविन्दसिंह जी बन्दा के पास गए तो उन्होंने बन्दा के चमत्कारों को विफल कर दिया और बन्दा ने स्वयं देखा कि गुरु गोविन्द सिंह जी की आज्ञा से सिक्ख कुछ बकरों को, जो कि बन्दा के थे, मारकर खा रहे थे। सिक्ख स्वय स्वीकार करते हैं कि वैरागी शाकाहारी होते हैं अतः यह सत्य प्रतीत नहीं होता कि बन्दा ने यह सहन कर लिया हो और दीक्षा ली हो। अतः या तो साखियों का वर्णन अति रंजित है या बन्दा ने दीक्षा नहीं ली। डा० गण्डा सिंह एवं तेजा सिंह जी यह स्वीकार करते हैं कि बन्दा अन्त तक शाकाहारी था और शाकाहारी बन्दा सिक्ख भेद का कारण नहीं था। यह वर्णन सर्वत्र उपलब्ध होता है कि गुरु गोविन्द सिंह जी ने बन्दा को जब अपनी तलवार देनी चाही तो सिक्खों ने उसे छीन लिया और कहा कि यह केवल खालसा पंथ द्वारा ही प्रयुक्त हो सकती है। अतः स्पष्ट है कि सम्भवतः बन्दा इस समय तक पूर्णरूपेण दीक्षित नहीं था। साथ ही गुरु गोविन्द सिंह जी ने बन्दा को पांच बाण और पांच उपदेश दिए। पांच उपदेश क्रमशः थे १) मुस्लिम अराजकता का अंत करने तक विश्राम न करना, २) सब कार्य पंच सिक्खों की मन्त्रणा से करना एवं प्रत्येक कार्य अर्दास के साथ प्रारम्भ करना, ३) कभी भी सम्प्रदाय की स्थिति का अनादर न करना और स्वयं को कभी गुरु न मानना, ४) पृथक् सम्प्रदाय कभी भी प्रारम्भ न करना ५) कभी भी किसी स्त्री से विवाह न करना। उपदेश नम्बर तीन और चार इस तथ्य के द्योतक हैं कि वीर बन्दा वैरागी जिसे कि गुरु गोविन्द सिंह जी ने इतना महान कार्य सौंपा अभी तक गुरु जी के विश्वास का संभवतया इतना पात्र न था। यदि वह पूर्णरूपेण दीक्षित हो जाता तो इन उपदेशों की इतनी आवश्यकता संभवतः न रहती कि वह अपने को गुरु मानने का कार्य न करे। इस प्रकार के वर्णन भी उपलब्ध होते हैं कि बन्दा कई बार आध्यात्मिक उन्नति एवं मनन व साधना के लिए हिमालय में चला जाया करता था। अतः यह पूर्ण रूपेण स्पष्ट नहीं होता कि बन्दा साधारण रूप से सिक्ख ही था। यह वर्णन मिलता है कि सरहिन्द की विजय करते ही उसने सिक्ख धर्म का पालन समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया है। डा० जी० सी० नारंग ने भी इस प्रकार का मत अभिव्यक्त किया है उन्होंने कहा है कि :

He was after all not a regular convert to Sikhism and had enjoyed spiritual leadership in his own limited sphere पुनः डा० जी० सी०

नारंग ने कहा है कि बन्दा और सिक्खों में जो अन्तर एवं वैमनस्य आया उसके कारण निम्न थे............ and the protection of the cow which formed an outstanding feature of Banda's mission had rallied the Hindus to his banne. Still there seemed to be something exotic in Sikhism, which in Banda's opinion detracted from its value as a lever for the uplifting of the Hindus. Accordingly he tried to give a more decidedly Hinduistic tone by altering some of its distinctive institutions, (a) The long hair, the most prominent badge of Sikhism and most important under Govind ceased to remain an essential feature of Sikhism under Banda, (b) The eating of animal diet had been encouraged by Govind. But Banda being a Vaishnava, discontenanced it and exhorted the Sikhs to refrain from it, (c) He substituted Fateh Dharma, Fateh Darshan instead of 'Wah Guruji ka Khalsa, Wah Guru ji ki Fateh' which was certainly a very serious innovation, (d) Nor did Banda fully understand the democratical character of Sikhism.

डा० गण्डा सिंह जी एवं तेजा सिंह जी ने इसे गम्भीर वैमनस्य का कारण स्वीकार नहीं किया है। परन्तु उपरोक्त वर्णन कुछ अंश तक संकेत करता है कि बन्दा संभवत: वैष्णव मनोवृत्ति का रहा हो मालकम के अनुसार भी वह एक पृथक सम्प्रदाय चलाना चाहता था। अत: सिक्ख रुष्ट हो गए कनिंघम ने भी अप्रत्यक्ष रूप से संकेत किया है कि संभवतया बन्दा हिन्दू विचार धारा से प्रेरित था।

He did not perhaps comprehened the general nature of Nanak's and Govind's reforms, the spirit of sectarianism possessed him, and he endeavoured to introduce changes into the modes and practices enjoined by these teachers, which should be more in accordance with his own ascetic and Hindus Nations. सभी साक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि स्वयं गुरु गोविन्द सिंह जी बन्दा के पास गए और उससे एक ऐसा अटूट सम्बन्ध स्थापित किया कि बन्दा ने गुरु जी के साथ हुए अन्याय का प्रतिशोध लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। पर जहां तक वैयक्तिक धर्म का प्रश्न है, संभवतया वह अपने संस्कारों को मानता रहा और अपनी हिन्दू परम्पराओं के प्रति आस्था रखता रहा। गुरू जी और वीर बन्दा वैरागी ने एक महान राजनैतिक उद्देश्य के लिए, एक दूसरे की सहायता का निर्णय किया था। गुरूजी ने विशिष्ट आज्ञाएं पंजाब के सिक्खों के लिए प्रेषित की थीं कि वे बन्दा के नेतृत्व में कार्य करें। भाई सोहन सिंह शीर-ए-बाबा यह स्पष्ट कहना चाहते हैं कि "Then there is another

very strong proof of Banda having never taken Amrita. When finding that, given to self-aggrandisement, he began to declare himself as Guru and tempted by Cupid did all that the tenth Guru had prohibited, the Sikhs had censured and deposed him, one of the condition on which they offered pardon was that he should take the holy Amrita so that he might not again act against the teneth of the Gurus and there be a stronger testimony of Banda having remained devoid of Amrita."

यद्यपि यह कथन अधिकांश महान सिक्ख लेखकों जैसे डा० गण्डा सिंह जी, खुशवंत सिंह जी एवं डा० गोपाल सिंह जी की विचार धारा से मेल नहीं खाता। परन्तु यह निष्कर्ष कुछ अंश तक स्वीकार्य ही होता है कि बन्दा उतना कट्टर सिक्ख नहीं था, जितनी कट्टरता की अपेक्षा उससे सिक्खों को थी। उसने संभवत: गुरुजी के उपदेशों और नियमों का अक्षरश: पालन नहीं किया। इसी कारण उसके नये नारों आदि से सिक्ख विक्षुब्ध हो गए। यदि यह विवादास्पद विषय जो कि स्वयं सिक्ख लेखकों में हैं जैसा कि उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है न भी सुलझे यह कुछ अंश तक संभव प्रतीत होने लगता है कि बन्दा के मूल हिन्दू संस्कार ही सदैव उस पर प्रबल रहे।

श्री सरदार आर० एस० अहलूवालिया एवं डा० गोपाल सिंह जी ने यह प्रस्तुत किया है कि गोविन्द सिंह जी ने बन्दा का नाम गुरुबख्श सिंह रखा था, परन्तु लोकप्रिय रूप से बन्दा नाम ही विख्यात था, अत: उसे बन्दा सिंह ही कहा जाता रहा। प्रोफ़ेसर साहिब सिंह जी ने यह मत अभिव्यक्त किया है, चूंकि एक जगह वैरागी के रूप में बन्दा को बाबा कहा जाता था, अत: बाद में उसे बाबा बन्दा सिंह कहा जाने लना। लोकप्रिय रूप से बन्दा को बन्दा वैरागी ही कहा जाता है और इतिहास उसे इसी नाम से जानता है। गुरू जी का दिया हुआ नाम बन्दा को निश्चित रूप से अधिक प्रिय होना वाहिए था। अहमद सिंह बुटालिया के जिक्र-ए-गुरुआं दा, इब्तिदा-ए-सिंहन वा मजाहब-ए-इशान में यह वर्णन मिलता है कि माधोदास ने अपने को बन्दा कहा था। परन्तु सिक्ख धर्म में दीक्षा के पश्चात गुरुबख्श सिंह नाम बन्दा को अधिक प्रिय होना चाहिए था। और इसे भी अपने लिए यही नाम प्रयुक्त करना चाहिए था। स्वयं डा० गण्डा सिंह जी बन्दा के नाम को बन्दासिंह बहादुर स्वीकार करते हैं। अत: बन्दा का नाम ही विवाद का विषय है। यह अनिश्चितता इस ओर आवश्यक संकेत करती प्रतीत होती है कि बन्दा वैरागी सर्वत्र बन्दा वैरागी के रूप में ही विख्यात था और डा० गण्डा सिंह जी द्वारा प्रस्तुत बहादुर शब्द उसे वीर सिद्ध करता है, अत: संभवतया वह वीर

बन्दा वैरागी के नाम से सदैव विख्यात रहा है। यहां तक कि कैफी खां एवं इरदित खां के वर्णनो में भी उपरोक्त विवादास्पद नाम उपलब्ध नहीं होते केवल उसका लोकप्रिय नाम ही मिलता है।

बन्दा और सिक्खों ने मुगल साम्राज्य के मूलोच्छेदन का दृढ़ संकल्प किया था। कुछ ऐसा ही दृढ़ संकल्प हिन्दू स्वराज्य की स्थापना का पहले शिवाजी ने भी किया था। साधारण जनता को एकत्रित एवं संगठित करके एक महान क्रांति का सूत्रपात करना बन्दा का भी उद्देश्य था। डा० एन० के० सिन्हा ने मराठों और सिक्खों के इस महान उद्देश्य में समानता बताते हुए कहा कि There is thus a striking similarity between the Sikh and the Maratha struggle for independence . . .A nation was up in arms against—its enemies and it is the collective effords massess rather than individual achievements that ultimately made the revolution a success.

साथ ही यह भी संभव है कि बन्दा ने मराठों के बलिदान और उनकी युद्ध प्रणाली एवं संगठन शैली का ज्ञान अपने दक्षिण प्रवास में प्राप्त किया हो और उसके कार्यान्वित करने का अवसर उसे पंजाब में प्राप्त हुआ और पंजाब में वही पहला व्यक्ति इस कार्य के लिए आगे आया। यह प्रश्न उठ सकता हैं कि वह दक्षिण में एक वैरागी के रूप में रहा था। परन्तु यह भी स्पष्ट ही है कि उसके मूल संस्कार राजपूत ही थे। शिवाजी के स्वराज्य की स्थापना के मूलमंत्र से सारा भारत प्रेरित था। अतः बन्दा का भी संभवतया वही उद्देश्य था इसे इतिहासकार सहज ही स्वीकार करते हैं। डा० गण्डा सिंह एवं तेजासिंह के अनुसार Banda Singh was the first man among Sikhs to think of founding a political ras.

बन्दा ने एक क्रांति का सूत्रपात किया था, जो कि देश के लिए व्यापक प्रेरणा बन गई थी। यह एक मानसिक क्रांति थी। जैसा कि डा० गण्डा सिंह जी एवं तेजासिंह जी ने भी कहा है :

There was a revolution affected in the minds of people, of which history often fails to to take note, A will was created in the ordinary massess to resist tyranny and to live and die for a national cause. . . . . The idea of a national state, long dead, once again became a living aspiration.

इस प्रकार बन्दा एक राष्ट्रिय उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सामने आया था और उसने कठोरतम एवं अत्यन्त ही गौरवमय बलिदान दिया। पंजाब के भविष्य को एवं भारत के भविष्य को उसने एक नवीन मोड़ देने का प्रयास किया था। उसके जीवन

काल में यह स्वप्न पूरा नहीं हो सका परन्तु सिक्ख साम्राज्य की स्थापना उसके बलिदान का ही परिणाम था। उसका हिन्दू राष्ट्र, भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता, आततायी राज्य के अन्त एवं स्वराज्य की स्थापना के लिए दिया गया बलिदान इतना महान था कि मानवता इस बलिदान पर आश्चर्य चकित होकर मूक रह गई। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है :

All who watched were struck dumb,
Banda's body was torn to pieces,
With pincers and burning tongs,
Bit by bit, he was searched and burnt,
With unshakabel courage Banda faced,
A martyrs death that day.

संदर्भ ग्रन्थ

१) सिक्खों का संक्षिप्त इतिहास (ए शार्ट हिस्ट्री ग्राफ सिक्ख्स)—डा० गण्डासिंह एवं तेजासिंह।

२) सिक्खों का इतिहास (हिस्ट्री ग्राफ सिक्ख्स)—कनिंघम।

३) बहादुर बन्दा (बन्दा दि ब्रेव)—भाई सोहनसिंह, शेर-ए-बाबा।

४) सिक्ख धर्म का रूपान्तरण (ट्रांसफोर्मेशन ग्राफ सिक्खिज्म)—डा० जी० एल० नारंग।

५) रेखा चित्र (स्केचेज़)—मेलकम।

६) बन्दा सिंह बहादुर—डा० गण्डा सिंह।

७) गुरु गोन्दि सिंह को श्रद्धांजलि (होमेज टू गुरु गोविन्द सिंह)—जयको बुक्स बम्बई।

८) गुरु गोन्दि सिंह—डा० गोपाल सिंह।

९) खालसा धर्म के प्रस्थापक (दी फांउडर ग्राफ दि खालसा)—गुरु गोन्दि सिंह संस्थान (फांउडेशन चंडीगढ़)।

१०) गुरु गोन्दि सिंह का जीवन चरित्र—प्रो० साहिब सिंह।

११) सिक्ख शक्ति का उदय (राइज़ ग्राफ दि सिक्ख पावर)—डा० एन० के० सिन्हा।

बंदा वैरागी की जीवन मीमांसा

वैद्यश्री गुरुदत्त
राष्ट्रीय इतिहासविद्

सन् १६२४-२५ की बात है। पंजाब के एक नेता डाक्टर सत्यपाल बन्दा वैरागी को हिन्दू धर्म के विपरीत आचरण करने वाला कहते थे। डाक्टर साहब 'रौलेट एक्ट' आन्दोलन में विख्यात हुए थे और फिर पंजाब में लाला लाजपत राय के बराबर के नेता समझे जाते थे। भाई परमानन्द जी ने 'बन्दा वैरागी' के नाम से एक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक में उन्होंने बन्दा वैरागी को हिन्दू धर्म के रक्षक की उपाधि से विभूषित किया। उसी पुस्तक पर विचार करते हुए डाक्टर साहब ने यह कहा था कि बन्दा वैरागी धर्म का शत्रु था।

यह विचार डाक्टर साहब के ही नहीं थे, बरंच देश में अन्य कोटि-कोटि हिन्दू मुसलमानों और सिक्खों के भी थे। यह इसलिए कि बन्दा वैरागी ने मुसलमानों को अति निर्दयता से मरवाया था, ऐसा कहा जाता है।

बन्दा का कार्य और उसका मूल्यांकन

बन्दा ने क्या किया था? इसका मूल्यांकन करने के लिए उस काल की देश की अवस्था का अनुमान लगाना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में मुगलों का राज्य स्थापित हुए पौने दो सौ वर्ष हो चुके थे और इस काल में कुछ ही वर्षों के काल को छोड़कर हिन्दुओं के साथ मुगलों का व्यवहार ऐसा रहा था, मानो वे उनके क्रीत दास थे।

स्वार्थी हिन्दुओं का ही यह चमत्कार था कि कोटि-कोटि हिन्दू एक आध लाख मुसलमानों से ऐसे शासन किए जाते थे, जैसे ये हिन्दू गाय, भैंसों के झुण्ड हों और मुगल सैनिक लाठी लिए ग्वाले उनको हांकते हुए ले जाते हों। इस पौने दो सौ वर्ष के मुगल राज्य में जब जब मुगल राज्य दृढ़ता से स्थापित हुआ, तब तब

मुगलों का हिन्दुओं पर अत्याचार भी बढ़ा। जहांगीर और शाहजहां के राज्य मुगलों के भली भांति स्थापित राज्य माने जाते हैं और इन दिनों में ही पंजाब, महाराष्ट्र और राजस्थान में मुल्ला-मौलानाओं के अत्याचार बढ़ रहे थे।

अकबर राज्य के प्रारम्भिक काल में जब अकबर अपने राज्य को विस्तार दे रहा था, तब तो हिन्दुओं से कुछ सीमा तक सहयोग चलता था। उसी काल में हिन्दुओं से जजिया उठा लिया गया था तीर्थ-यात्रा का कर हटा लिया गया था और कहा जाता है कि अकबर नगरकोट के देवी के मन्दिर में सोने का छत्र चढ़ा आया था। परन्तु ज्यों-ज्यों राज्य सुदृढ़ होता गया और यह दूर दूर तक विस्तार पाता गया, हिन्दुओं का दास की भांति उत्पीड़न आरम्भ हो गया था।

जहांगीर का राज्य गुरु अर्जुन देव के बलिदान से आरम्भ हुआ। फिर गुरु हर गोविन्द को बन्दी बना कर रखा गया। शाहजहां के काल में यह जोर-जुल्म जारी रहा।

शाहजहां के विषय में स्कूलों में पढ़ाने वाले इतिहास में भी यह लिखा मिलता है।

शाहजहां पक्का सुन्नी मुसलमान था। वह धार्मिक पक्षपात करता था और कभी कभी हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार करता था। कहीं-कहीं औदार्य भी दिखाता था। यूरोपीय यात्री डैलावैली लिखता है कि खम्भात के हिन्दुओं से रुपया पाने पर उसने वहां गो-हत्या बन्द कर दी।

रुपया लेकर राजा की ओर से गौ-हत्या बन्द करने को उसकी उदारता बताई है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि जब और जहां वह उदार नहीं होता था, वहां क्या करता होगा ?

शाहजहां की बीवी मुमताज महल के विषय में कहा जाता है कि वह अति क्रूर थी और विधर्मियों की निर्मम हत्या कराती थी। यहां तक कि शाहजहां की हिन्दुओं और ईसाइयों से निर्दयता में कारण वह ही कही जाती है।

शाहजहां के उपरान्त तो औरंजेब का राज्य आया। इस राज्य काल में क्या हुआ ? उसके विषय में डा० आशीर्वादी लाल जी श्रीवास्तव अपनी पुस्तक The Mughul Empire के पृष्ट ३३९ पर लिखते हैं। पुस्तक अंग्रेजी में है और उसका अनुवाद इस प्रकार है।

औरंगज़ेब राज्य के सम्बन्ध में इस्लामी सिद्धांत पर विश्वास रखता था। वह ऐसे शासन में विश्वास रखता था, जिसमें शासक कुरान का कानून शासन में चलाए और वह देश को दारा-उल-हरब से दारा-उल-इस्लाम बना सके। वह इस्लाम को राज्य धर्म बनाना चाहता था और राज्य की पूर्ण शक्ति को अपने मज़हब के प्रचार के लिए लगाता था।

उसने पुराने मन्दिरों की मरम्मत करने से मना कर दिया था। इसके कुछ ही काल उपरान्त सब प्रान्तों के हाकिमों को आज्ञा दी थी कि काफिरों के सब विद्यालय और मन्दिर गिरा दिए जाएं और दृढ़ता से उनकी शिक्षा और पूजा-पाठ बन्द कराई जाए। 'मुहतासिब' घूमते रहते थे और वे हिन्दू-मन्दिर और मूर्तियां विनष्ट करते रहते थे। सरकारी मन्दिर गिराने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि उन पर एक दरोगा नियुक्त होता था और उनके कार्यों को दिशा देता था। यहां तक कि बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर, मथुरा का केशव देव का मन्दिर और पाटन का सोमनाथ का मन्दिर गिराकर भूमि में मिला दिए गए थे। मित्र हिन्दू राजाओं के राज्यों में भी, जैसे कि जयपुर में भी मन्दिर छोड़े नहीं गए। मन्दिर और मूर्तियों का तोड़ना प्रायः चलता था और उसके साथ उनको भ्रष्ट और अपमानित किया जाता था। प्रायः वहां गौ हत्या की जाती और मूर्तियों को सड़कों पर दमूसों से कूट दिया जाता था।

सन् १६७८ में पुनः हिन्दुओं पर जजिया लगा दिया गया, जिससे इस्लाम फैले और काफिरों को पराजित किया जाए……………। हिन्दुओ ने चीख-पुकार की, परन्तु सुना नहीं गया। उसने तीर्थ-यात्रा कर भी लगा दिया। तीर्थ स्नान करने पर छः रुपये चार आने कर देना पड़ता था। वस्तुओं पर कर मुसलमानों से नहीं लिया जाता था और हिन्दुओं से पांच प्रतिशत वसूल किया जाता था।

औरंगज़ेब ने मृत्युकाल (१७०७) तक और उसके पीछे बहादुरशाह और फरुखसीयर के राज्य में हिन्दुओं को किसी प्रकार की राहत नहीं दी गई।

इस काल में बन्दा वैरागी पंजाब में आया। उसके आने से पूर्व गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह के अल्प-वयस्क बच्चों का बलिदान हो चुका था। पंजाब में औरंगज़ेब की धांधली मची हुई थी। तब बन्दा वैरागी ने क्या किया, यह विचारणीय रह ही नहीं जाता।

विचारणीय यह रह जाता है कि इस मूर्खों के देश में बन्दा वैरागी का कैसे

ग्रंत हुग्रा ? इसमें दो मुख्य कारण बताए जाते हैं। प्रथम कारण यह था कि पंजाब में हिन्दुग्रों के वे तत्व, जिनका संगठन हुग्रा था, सिक्ख थे। ग्रादि गुरु नानक से लेकर दशम गुरु गोविंद सिंह तक को वे ग्रपना पथ-प्रदर्शक मानते थे। उन दिनों हिन्दुस्तान में गुरु की बहुत महिमा थी ग्रौर जो एक बार किसी समुदाय का गुरु बन गया वह उस समुदाय में परमात्मा का रूप ही बन जाना था।

ऐसी स्थिति में यदि गुरु गोविन्द सिंह यह न कह जाते कि उनके पीछे कोई नया गुरु नहीं होगा तो बन्दा गुरु पद पर सुशोभित माना जाता। गुरु गोविंद सिंह बन्दे को ग्रपना ग्राशीर्वाद ग्रौर तलवार दे गए थे। तब बन्दा वैरागी गुरु-पद पर होता हुग्रा सिक्खों को ग्रपने व्यवहार के ग्रनुकूल बना लेता।

हुग्रा यह कि युद्ध की स्थिति में ग्रौर राज्य स्थापित होने के काल में वह त्याग ग्रौर तपस्या रह नहीं सकती थी जो गुरुग्रों में केवल धर्म प्रचार के समय थी। ग्रतः सिक्खों की दृष्टि में बन्दा की वह मान-प्रतिष्ठा नहीं रही थी जो गुरुग्रों की थी। यदि वह गुरु गद्दी पर ग्रासीन होता तो नई व्यवस्था देकर ग्रपने साथियों में वह श्रद्धा, भक्ति उत्पन्न कर सकता, जो गुरुग्रों के लिए थी।

बन्दा ने सिक्खों के ग्रतिरिक्त भी हिन्दुग्रों की सेना बनाने का यत्न किया था, परन्तु उसमें वह सफल नहीं हो सका था।

दूसरा कारण था हिन्दुग्रों ग्रौर सिक्खों का राजनीति से सर्वथा ग्रनभिज्ञ होना। फरुखसीयर इसमें सिक्खों को चकमा दे गया। फरुखसीयर के गुप्तचरों ने सिक्खों में बन्दा के प्रति ग्रश्रद्धा देख सिक्खों को बन्दा के विरुद्ध करने का यत्न किया। गुरु गोविंद सिंह की पत्नियों को समझाया गया, भड़काया गया ग्रौर सिक्खों के उस तत्व को, जो बन्दा के लिए ग्रश्रद्धा रखते थे, एक पत्र लिखवा कर बन्दा ग्रौर सिक्खों में फूट डलवा दी गई। वे सिक्ख तत्व खालसे कहलाते थे।

दिल्ली के शहनशाह ने उन सिक्खों को, जो बन्दा की सेना छोड़कर शाही सेना में ग्राए, एक रुपया प्रति दिन के वेतन पर नौकर रख लिया। बहुत से सिक्ख शाही सेना में भरती हो गए।

दिल्ली के शहनशाह ने पांच हज़ार रुपये ग्रमृतसर दरबार साहब को दिया ग्रौर सिक्खों ने निम्न शर्तों पर सन्धि कर ली।

१) खालसा देश में लूट-मार नहीं करेंगे।

२) खालसा बन्दा की सहायता नहीं करेंगे।

३) विदेशी आक्रमण के समय खालसा शहनशाह दिल्ली के लिए लड़ेंगे।
४) खालसाओं की जागीरें छीनी नहीं जाएंगी।
५) हिन्दूओं को विवश कर इस्लाम स्वीकार नहीं कराया जाएगा।
६) हिन्दुओं के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाएगा और उनकी मजहबी बातों में दखल नहीं दिया जाएगा।

यह सन्धि दरबार साहब के अधिकारियों, तत्व खालसा, के साथ हुई और वे बन्दा के विरुद्ध प्रचार करने लगे।

बन्दा पकड़ा गया और अपने सात सौ साथियों के साथ चांदनी चौक दिल्ली में अनेक प्रकार के कष्ट देकर मार डाला गया।

इसके कुछ ही पीछे सिक्खों के साथ हुई सन्धि भंग हो गई और दो-दो रुपये पर सिक्खों के सिर बिकने लगे।

अतः बात ठीक ही है 'हम हैं मूर्खों के देश' में।

वीर बन्दा वैरागी ने अधर्म के विरुद्ध युद्ध किया परन्तु पंथवाद ने उसे धोखा दिया !

पं० योगेश चन्द्र चतुर्वेदी

जन्म

इस महापुरुष का जन्म पंजाब की एक पुंच्छ रियासत के एक ग्राम रजोरी में सम्वत् १७२७ वि० के कार्तिक मास में हुआ था। आपके पिता रामदेव एक राजपूत थे। बालक का नाम लक्ष्मण देव रखा गया। यही लक्ष्मण देव आगे चलकर बन्दा वैरागी या बन्दा बहादुर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बचपन और विद्या

बालक लक्ष्मणदेव प्रारम्भ से ही प्रखर बुद्धि के, चुस्त एवं मजबूत थे। अल्पावस्था में ही उन्होंने हथियार का चलाना और घुड़सवारी सीख ली। थोड़े ही समय में वे शस्त्र-विद्या एवं अश्व-विद्या में निपुण हो गए। घोड़े पर चढ़कर वह जंगलों में निकल जाते थे और शिकार खेलते थे। एक दिन शिकार खेलते-खेलते वन में बहुत दूर पहुंच गए और एक हिरनी को अपने बाण से गिरा दिया। हिरनी गर्भवती थी, पेट चीरने पर उसके तीन बच्चे निकले और तत्काल ही मर गए। इस घटना ने लक्ष्मण देव के ऊपर बड़ा प्रभाव डाला और उनके जीवन में एक महान परिवर्तन उपस्थित हुआ। यहीं से उनमें वैराग्य की भावना का प्रादर्भाव हुआ और वह सांसारिक-कार्यों को छोड़कर घर से निकल पड़े। और धीरे-धीरे कसूर में उनकी भेंट वैरागी जानकीदास से हुई और उन्हीं की संगति में वैरागी बनकर वहीं रह निकले। तथा बाबा माधोदास के नाम से विख्यात हुए। माधोदास ने उस स्थान पर रह कर ज्ञान की प्राप्ति की ओर यथेष्ठ कीर्ति कमाई, जिससे कि उनका नाम दूर-दूर तक फैला और उन्होंने बड़ी ख्याति प्राप्त की। तपस्या से उनका जीवन बहुत शान्तिमय हो गया। दूर-दूर से लोग उनकी शरण में पहुंचते थे और उनके कष्टों का निवारण होता था तथा कामनाएं सिद्ध होती थीं। उन्होंने विभिन्न तीर्थों का भ्रमण किया और पंचवटी तीर्थ में तपस्या की। तदुपरान्त नंदेर में गोदावरी के तट पर कुटी बनाकर रहने लगे।

यवन अत्याचार

इन दिनों दिल्ली में मुगल बादशाह औरंगजेब का शासन था। दमन और अत्याचार की सीमा न थी। अशान्ति, असन्तोष आतंक अपनी चरम सीमा पर थे। फिर भी देश में विदेशी शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता का सतत युद्ध किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं पर निरन्तर चल रहा था। अत्याचारी शासन के विरोध में चारों ओर एक लहर थी। पंजाब में गुरु गोविंदसिंह जी का नेतृत्व था। गुरुओं की आवाज़ को दबाने के तिए मुगल बादशाह ने बड़े-बड़े अत्याचार किए और विरोध में निरंतर युद्ध हुए। गुरु गोविंदसिंह जी के किशोर वयस्क बेटे अचानक पकड़े गए और अत्याचारी, विदेशी क्रूर शासन ने उन दोनों भाइयों को जीवित ही दीवार में चुनवा दिया, किन्तु उन सिंह-शावकों ने इस्लाम-पंथ स्वीकार नहीं किया और हंसते-हंसते देश की स्वतन्त्रता के हेतु न्यौछावर हो गए। इन बातों से भी गुरु जी डिगे नहीं और मुकाबला करते रहे।

गुरु गोविन्दसिंह-बंदा वैरागी भेंट तथा नामकरण

इधर बाबा माधोदास की कीर्ति सुनकर गुरु जी उन से मिलने को लालायित हो उठे। और नंदेर पहुंचकर बाबा माधोदास से भेंट की तथा उन्हें देश की विषम परिस्थितियों से अवगत कराया। गुरु जी ने मुगल बादशाह के घनघोर अत्याचारों का बाबा माधौदास के सम्मुख मानो एक चित्र ही खींच दिया और कहा कि आप जैसे तेजस्वी वीर के लिए यह समय तलवार लेकर धर्म संस्कृति एवं मातृ-भूमि की रक्षा करने का है। गुरु जी की बात सुनकर उनके हृदय में अत्याचारी व अधर्मी शासन के विरुद्ध क्रान्ति की भावना का प्रादुर्भाव हुआ और कहा कि "आप चिन्ता न करें, मैं आपका बंदा हूं।" बस यहीं से बाबा माधोदास बंदा वैरागी अथवा बंदा बहादुर के नाम से विख्यात हो गए।

धर्म कार्य

गुरु गोविंदसिंह जी से बातचीत के उपरान्त और यह जानकर कि देश में महान धर्म-संकट उपस्थित है बाबा माधोदास (अब बंदा बहादुर) ने धर्म, संस्कृति एवं मातृ-भूमि की रक्षा के हेतु परकीय बन्धन के विरुद्ध पुनः शस्त्र ग्रहण करना उचित समझा। और अपना स्थान छोड़कर पंजाब के लिए प्रस्थान किया। उनकी महान तेजस्विता, वीरता और पुरुषार्थ को देखकर लोग उनके साथ हो लिए और एक छोटी-सी सेना बन गई। बंदा बहादुर ने दनादन मुगलों पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिए और जीवन पर्यन्त मुगल बादशाह को दम नहीं लेने दिया। शत्रु उनका नाम लेते ही दहला उठते थे और उनकी अपेक्षा कई गुने अधिक होते हुए भी मैदान छोड़कर भाग जाते थे। वह वायु के वेग के समान नगरों को जीतते हुए

किलों पर कब्जे कर निकले, जिससे कि सैन्य-संचालन के हेतु अपार धन-राशि एवं रसद सामग्री उनके हाथ आई। वाद को रियासत मंडी में उन्होंने अपना विवाह भी किया, जिससे उन्हें एक पुत्र हुआ। यहां यह कहना अप्रसांगिक न होगा कि वैरागी-सम्प्रदाय में विवाह अनुचित नहीं माना जाता।

कुछ ही दिनों में बंदा वैरागी ने पंजाब के बहुत से नगर जीत लिए और कंजपुर तक पहुंचे। जैसा कहा जा चुका है उन के नाम मात्र से शत्रुओं के हृदय कांप जाते थे। वे उनमें कोई दैवी शक्ति समझते थे। मुगलों के खज़ाने व फौजों का चलना मुश्किल था। त्यागी बंदा ने खज़ानों की अपार धन-राशि को सिक्खों की सेना में बांट दिया और अपने निजी कार्य के लिए कुछ न रखा। उन्हें निजी इच्छा कोई न थी। उन्हीं दिनो साधौरा का मुसलमान शासक उस्मान खां वहां के हिन्दुओं पर घनघोर अत्याचार कर रहा था। उन लोगों की याचना पर बंदाबहादुर ने साधौरा पर चढ़ाई कर दी और दो दिन की घनघोर लड़ाई के बाद उस्मान खां मारा गया। मुखलिसगढ़ पर पूर्ण कब्ज़ा करके उसका नाम लोहगढ़ रख दिया और उसी किले में अपनी सैन्य-सामग्री इकट्ठी की।

विजय का प्रभाव

सरहिन्द के सूबेदार ने दो सेनापतियों व लगभग ६ सहस्र सेना व तोपों के साथ सिक्खों पर चढ़ाई की। रोपड़ के स्थान पर युद्धोपरान्त मुसलमानी सेना की पराजय हुई। इतने में ही मुसलमानों की एक दूसरी भारी सेना आ गई और घमासान युद्ध हुआ और रक्त की धारा बह गई। मुसलमानी सेना के मुकाबिले बंदा की सेना बहुत कम थी, कहां तक डटते। बंदा स्वयं उस समय वहां मौजूद न थे। वहां से ३ कोस की दूरी पर एकान्त में भजन कर रहे थे। पराजय की बात सुन कर घोड़े पर सवार हो वायुवेग से उन्होंने युद्धस्थल की ओर प्रस्थान किया। उनकी शक्ल देखते ही फौजें लौट पड़ीं और यवनों के छक्के छूट गए तथा मैदान बंदा के हाथ आया। सूबेदार वज़ीर खां व उनके मंत्री सुच्चानंद मार डाले गए। बहुत से नगरों व किलों पर कब्ज़ा हो गया।

इस प्रकार से अम्बाला, अमृतसर, सीफाबाद, कैथल, दामला, राहूं, राहकोट, जिगरांव, खलौर, नालागढ़, नाहन और तलवण्डी आदि बहुत से नगरों व राज्यों पर वरन् यों कहा जाए कि पंजाब के एक बहुत बड़े भाग पर केवल २ वर्ष में बंदा बहादुर का अधिकार हो गया और उन्होंने सम्वत् १७६५ में बड़ा भारी दरबार किया। जीते हुए बहुत से इलाके सिक्खों में बांट दिए गए। छोटे नवाब व राजा चौथ दे निकले। बंदा बहादुर ने अमृतसर पहुंचकर दरबार साहब में

बहुत सा धन भेंट किया और एक दरबार भी किया, जिसमें सिक्खों को इनामात बांटे गए। बहुत लोग सिक्ख भी बने। फलतः बंदा के पास एक बड़ी सेना इकट्ठी हो गई। लोग बंदा वैरागी को ही गुरु समझकर पूजा कर निकले और शिष्य बनने लगे। बंदा बहादुर अब राजसी ठाठ से रहने लगे।

पंजाब में बंदा की उपयोगिता और मुसलमान प्रतिक्रिया

पंजाब में बंदा की उपयोगिता अति महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। उनकी तेजस्विता अदम्य साहस और बहादुरी ने चारों ओर उनकी ख्याति एवं बोलबाला पैदा कर दिया। किसी भी स्थान पर उनके उपस्थित होते ही एक लहर दौड़ जाती थी। ये बातें अंततोगत्वा सिक्खों को सहन न हुई और उनके हृदय में अपने नेता के प्रति ईर्ष्या-भाव की उत्पत्ति हुई। उन्होंने एक विरोधी दल बना लिया तथा बंदा के विरोध में प्रचार कर निकले। बदा बहादुर ने इन बातों की ओर ध्यान भी न करते हुए दिल्ली के पास करनाल, पानीपत आदि ज़िलों पर अधिकार कर लिया।

औरंगज़ेब के बाद मुगल बादशाह बहादुरशाह ने पंजाब को निकलते देखकर और सिक्खों में बंदा की खिलाफत जानकर एक बहुत बड़ी सेना सिक्खों के विरुद्ध भेजी और अमीनाबाद में घनघोर युद्ध हुआ। सिक्ख हारसे लगे और बंदा वैरागी को स्मरण कर निकले। वैरागी उस समय कुल्लू में थे। सूचना मिलते ही तत्काल होशियारपुर आए। उनका आगमन सुनते ही मुसलमानी सेना बिना युद्ध के ही भाग निकली और सारा सूबा फिर अपने आप ही बंदा के अधिकार में हो गया। इसी तरह सहारनपुर के राजा अली मुहम्मद ने मुसलमानों की एक विशाल सेना इकट्ठी करके बंदा बहादुर पर चढ़ाई की, किन्तु बुरी तरह पराजित हुआ और सेना भाग गई और सहारनपुर भी बंदा के आधीन हो गया।

मुगल बादशाहत के लिए बंदा सिरदर्द हो गए, अतः बादशाह ने चतुर सेनापतियों की कमान में एक विशाल सेना व्यक्तिगत रूप से बंदा बहादुर के विरुद्ध भेजी। कोट आबूखां के पास महान संग्राम हुआ, जिसमें सिक्खों की पराजय हुई। किसी प्रकार अनेकानेक कष्टों व विपत्तियों को झेलते हुए बंदा लोहगढ़ पहुंचे और फिर सेना को संगठित किया। इधर बादशाह ने शाहज़ादा जहांगीर की कमान में एक विशाल सेना फिर भेज दी, जिसने लोहगढ़ का घेरा डाल दिया। रोजाना युद्ध होते थे, किन्तु किला हाथ न आया। यह सूचना मिलते ही बादशाह बहादुरशाह स्वयं बड़ी भारी फौज लेकर लोहगढ़ के लिए रवाना हुआ। किन्तु संयोगवश रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई और फौजें लौट

गईं। बंदा बहादुर भी पहाड़ों पर चले गए और एक वर्ष तक वहीं घूमते रहे। इसी बीच में मुसलमानों ने सिक्खों पर फिर आक्रमण किए, जिसमें सिक्ख पराजित हो निकले। बंदा के लौटने पर बसी गांव के युद्ध में मुसलमानों की पुनः पराजय हुई और बंदा ने आगे को बढ़ जालंधर पर कब्ज़ा करके सूबा सरहिन्द पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया।

फरुखसियर की कूटनीति और सिक्ख

दिल्ली में अब बादशाह फरुखसियर का राज्य था। युद्ध स्थल से हटकर उसने बंदा के विरुद्ध चालाकी का पेंतरा बदला क्योंकि युद्ध में बंदा वैरागी के मुकाबिले उसे सफलता की कोई आशा न थी। उसने अपने एक हिन्दू मंत्री के द्वारा गुरु गोविन्दसिंह जी की माता सुन्दरी देवी के पास सन्देश भेजा कि हमारे पूर्वज तो आपके पूर्वजों के सेवक रहे हैं। हमें आपकी खातिर मंजूर है। हम सिक्खों को उनके अधिकार देंगे। बंदा वैसे ही आफत किए हैं, आप उन्हें रोकें। माता बहकाने में आ गईं और बंदा बहादुर को तत्काल पत्र लिख दिया कि तुम गुरु के सच्चे सेवक हो, युद्ध बन्द कर दो, बादशाह जागीर देने को तैयार हैं। बंदा के पास भेज दिया गया। बंदा बहादुर ने पत्र पढ़ा तो क्रोध की सीमा न रही और माता सुन्दरी देवी को लिख भेजा कि "मैं वैरागी साधु हूं, गुरु का शिष्य नहीं। अपने बल से गुरु-पुत्रों का बदला लेने के लिए मैंने इतना प्रदेश जीता है और युद्ध किए हैं। मैं न जागीर चाहता हूं और न किसी की दया। मैं आपकी आज्ञा मानने में असमर्थ हूं। फिर मुझे आज्ञा देने का आपको अधिकार ही क्या है?"

बंदा के उत्तर को अपना अपमान समझकर माता सुन्दरी देवी व साहबदेवी ने सिक्ख सरदारों व पन्थ को संदेश भेज दिया कि बंदा गुरु का सिक्ख नहीं है, अतः उसको कोई सहयोग मत दो। आदेशानुसार सिक्खों ने बंदा का साथ छोड़ दिया। यही नहीं सम्वत् १७७३ वि० के बैसाखी मेले के अवसर पर अमृतसर में सिक्खों ने बंदा की अवहेलना की और अपमान किया। इह अपमान ने बंदा बहादुर को मानो सोते से जगा दिया। उसके महान् उपकारों का बदला सिक्खों ने यह दिया। उनकी दृष्टि में तो सिक्ख हिन्दू-समाज के ही अंग थे—अतः उन्हें सिक्खों के इस कार्य से बड़ी चोट पहुंची। अब उन्होंने पूरे हिन्दू समाज को संगठित करने का संकल्प किया और अल्पकाल में ही हिन्दुओं की अच्छी सेना बना ली।

इधर बंदा से अलग हुए सिक्ख अपने को तत्खालसा कह निकले। दिल्ली

का बादशाह तो इसी अवसर की खोज में था। उसने बंदा पर चढ़ाई कर दी घमासान युद्ध के उपरान्त नैनाकोट के समीप शाही सेना की फिर भी पराजय हुई। अब बादशाह घबरा गया और उसने नई चाल चलकर बंदा बहादुर के विरुद्ध तत्खालसों से सन्धि कर ली। इधर बंदा बहादुर ने गुरुदासपुर में एक अच्छी सेना इकट्ठी करके लाहौर पर चढ़ाई कर दी। लाहौर के सूबेदार ने बहुत बड़ी सेना से बंदा बहादुर का मुकाबिला किया और घनघोर युद्ध हुआ। यह बात भी उल्लेखनीय है कि तत्खालसों की सिक्ख फौजें भी सूबेदार के साथ थीं। बंदा बहादुर ने जब तत्खालसों को अपने विरुद्ध खड़ा देखा तो तलवार उठाना मुनासिब न समझकर वह लड़ाई छोड़कर गुरदासपुर वापिस चले आए। उन्होंने तत्खालसों से वार्ता करने की चेष्टा भी की, किन्तु सफलता प्राप्त न हुई। तब उन्होंने अपने व्यक्तित्व के बल पर ही देश को जीतने की प्रतिज्ञा की। उनके अन्दर साहस व पुरुषार्थ की कमी न थी। उन्होंने फिर कलानौर, स्यालकोट, वज़ीराबाद व गुजरात के कुछ भागों पर आक्रमण कर अपने अधीन कर लिया और स्वयं गुरदासपुर में रह निकले।

सम्वत् १७७६ में बादशाह ने फिर एक विशाल सेना बंदा बहादुर के विरुद्ध भेजी और उसने अचानक ही गुरदासपुर को चारों ओर से घेर लिया। आने जाने के मार्ग कतई अवरुद्ध कर दिए गए और बाहर से रसद पहुंचना नितान्त बन्द हो गया। इधर भीतर की रसद बिल्कुल समाप्त हो गई और हाहाकार मच गया। भूखों मरने पर लगभग ५०० सिपाही चुपचाप बाहर निकले, किन्तु पता लगने से पकड़े गए और मार डाले गए।

अब भीतर की हालत बहुत खराब थी। लोग भूखो मर रहे थे। स्वयं बंदा भी निराहार रहने के कारण पिंजरवत् हो गए थे, किन्तु साहस नहीं खोया था। वह लोगों को आश्वासन देते थे कि बग़ैर तुम्हारे खिलाये एक दाना भी नहीं खाऊंगा। अन्त में हर तरीके से मरना ही सोच सब फाटक खोल दिये गए और यवनों की विशाल सेना किले के अन्दर पहुंच गई। बंदा बहादुर ने अपने धनुष-बाण रख दिए और अपने भूख-प्यास से निर्बल शरीर को शत्रुओं के हाथों समर्पित कर दिया।

चौदह वर्षों की लगातार लड़ाई के बाद बंदा बहादुर ने परिस्थितियों के वश स्वयं को शत्रु के हाथों समर्पित कर दिया और वह लोहे के बड़े सीखचों में बन्द कर दिए गए। किन्तु वह न घबराये और न विचलित हुए। उन के साथ बन्दी किए हुए सात सौ चालीस और भी सैनिक थे। सभी लोग काजियों के

सम्मुख पेश किए गए। काज़ियों ने इन लोगों से इस्लाम पंथ स्वीकार कर लेने को कहा, अन्यथा प्राण-दण्ड की आज्ञा दे दी गई। बंदा बहादुर व उनके साथियों ने घृणा से मुंह फेर लिया और हंसते-हंसते मृत्यु-दण्ड को सहर्ष स्वीकार किया, किन्तु डिगे नहीं।

दिल्ली के चांदनी चौक में इन सात सौ चालीस आदमियों का सौ आदमी प्रति दिन के हिसाब से बड़ी नृशंसता पूर्वक वध किया गया परन्तु अपने पवित्र मार्ग से विचलित न होकर सभी ने मृत्यु का सहर्ष एवं प्रसन्न मुद्रा में आलिंगन किया। उन के महान बलिदान अमर हैं और वे धन्य हैं।

आठवें दिन बंदा की बारी थी। बादशाह ने पूछा कि तुम कैसी मौत पसन्द करते हो। बंदा ने हंस कर उत्तर दिया, "जैसी तुम्हारी मर्ज़ी, मेरे लिये तो यह शरीर ही दुःख का मूल है।"

वध-स्थल पर बंदा के चारों ओर भालों की कतार बांध दी गई और भालों पर उनके साथियों के सिर टांग दिए गए बंदा के छोटे-से बच्चे को लाकर और लम्बा छुरा देकर बच्चे का अपने हाथ से वध करने को कहा गया। मना करने पर जल्लाद ने वहीं पर बच्चे के दो टुकड़े करके बंदा के शरीर पर फेंक दिए। फिर लोहे की गरम की हुई लम्बी-लम्बी सलाखों से सींखचों के भीतर उसके शरीर पर प्रहार किए गए तथा लाल-गरम चीमटों से शरीर का मांस नोंचा गया और यहां तक कि शरीर की हड्डियां ही दिखाई पड़ने लगीं, परन्तु व्यथा के स्थान पर चेहरे पर प्रसन्नता ही रही। मानों उनकी स्थिति सर्वानन्द में हो। एक दरबारी ने प्रश्न भी किया कि अब प्रसन्न क्यों हो? बंदा ने उत्तर दिया "जिसे आत्मज्ञान है, वह दुःखों से परे है।" और उनकी इह लीला समाप्त हो गई।

सिक्ख मत : एक समीक्षा

डा० बुद्ध प्रकाश

गुरु नानक का दर्शन

सिक्ख मत की स्थापना गुरु नानक (१४६६–१५३८ ई०) ने की। दार्शनिक दृष्टि से उनका सिद्धांत वेदान्त के उस रूप पर आश्रित था, जिसे तन्त्र ने प्रस्तुत किया था और मध्यकाल के प्रायः सभी सन्त सम्प्रदायों ने स्वीकार किया था। वे 'इक ओंकार' 'अकाल पुरुष' और 'प्रकृति' को चरम सत्य मानते थे। उसने 'पुरुष' और 'प्रकृति' दोनों की सृष्टि की और अपना 'हुकुम' चलाया। प्रकृति, माया, मोह, गुण, देवता, राक्षस और सारा जगत् उसी से बना है। ऐसा नहीं है कि वह कूटस्थ या अलेहदा रहे और प्रकृति या माया जगत् को रचती रहे, बल्कि उसने स्वयं प्रकृति को बनाया, इसमें प्रवेश लिया और इसे देखकर आनन्द अनुभव किया। इसलिए सारी प्रकृति और सारा जगत् सत्य है। इसके सब काम अहंकार से चलते हैं। लेकिन व्यक्तिगत अहंकार को ही सब कुछ मान बैठना पाप की जड़ है। अतः मनुष्य को अपने कर्म द्वारा अपने मन से इस व्यक्तिगत अहंकार को निकालकर समष्टिगत अहंकार अर्थात् सृष्टि की सम्पूर्णता को आत्मसात् करना चाहिए, जो अकाल पुरुष की अभिव्यक्ति है। गुरुनानक कहते हैं कि "मन कागज़ है और हमारे कर्म स्याही हैं तथा पुण्य और पाप इस पर लिखा हुआ लेख है"। हमें अपने कर्म की स्याही द्वारा मन के कागज़ पर लिखे हुए पुण्य के लेख को बढ़ाना है और पाप के लेख को मिटाना है। इस के लिए गुरु की सहायता आवश्यक है। गुरु भगवान के सेवक हैं, जो मनुष्य के मार्ग-दर्शन के लिए समय-समय पर आते हैं लेकिन वे भगवान् बिल्कुल नहीं हैं। उन्हें भगवान् मानना भारी भूल और गहरा अपराध है। गुरु केवल मनुष्य ही नहीं है। शास्त्र और शब्द भी गुरु हैं। इसलिए गुरुओं में श्रद्धा रखना और उनके शास्त्र को मानने से मनुष्य की आत्मा का 'अकाल पुरुष' से संयोग हो सकता है, जो जीवन का चरम लक्ष्य है।

सिक्खों में छोटे वर्गों और किसानों की बहुलता

गुरु नानक जाति-पांति के कट्टर विरोधी थे। उनके अनुयायी सब जातियों के थे, लेकिन विशेषतया उनमें छोटे वर्गों और किसानों की बहुलता थी। मोहसिन

फानी ने लिखा है कि "सिक्खों में ऐसा कोई नियम नहीं है कि ब्राह्मण खत्री का शिष्य न हो, नानक खुद खत्री थे। यही नहीं, उन्होंने खत्रियों को भी जट्टों से निचली श्रेणी दी है जो बैसों (वैश्यों) में सबसे छोटे माने जाते हैं" (दबिस्तान-ए-मजाहिब, पृ० २८६)। वे फिर लिखते हैं कि सिक्खों में "उदासी या संन्यासी को पक्का नहीं समझा जाता। गुरु के सिक्ख खेती करते हैं, कुछ नौकरी या व्यापार भी करते हैं, और अपनी शक्ति के अनुसार गुरु के प्रतिनिधि (मसण्ड) को नज़र देते हैं" (वही पृष्ठ ६८७)। इससे पता चलता है कि सिक्ख घरबारी, खेतीपेशा और दस्तकार लोगों का समूह था, जो सामाजिक एकता और समानता और सचाई और ईमानदारी के जीवन को महत्व देते दे। वे 'नाम जपन अते वण्ड के छकन' (नाम जपने और बांटकर खाने) को अपना खास उसूल समझते थे।

सिख संगठन का विकास

धीरे-धीरे सिक्ख संगठन का विकास हुआ। दूसरे गुरु अंगद (१५३९–५२ ई०) ने गुरुमुखी लिपि का प्रचार किया और लंगर को प्रधानता दी। तीसरे गुरु अमरदास (१५५२–७४ ई०) ने हर आने वाले के लिए 'गुरु के लंगर' में भोजन करना ज़रूरी बताया। औरतों में पर्दे और सती के रिवाज की निन्दा की और धर्म के प्रचार के लिए बाईस 'मञ्भी' (गद्दी) कायम कीं। चौथे गुरु रामदास (१५७४–८१ ई०) ने अमृतसर की स्थापना की, जो रामदासपुर कहलाता था और सिक्खों का प्रमुख तीर्थ स्थान बना।

गुरु अर्जुन का बलिदान

पांचवें गुरु अर्जुन (१५८१–१६०६) ने अमृतसर के तालाब को पूरा कराया और उसके बीच में प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान् मियां मीर के हाथ से हर मन्दिर की बुनियाद रखवाई। इस मन्दिर के चारों तरफ दरवाज़े थे, जिसका मतलब है कि यह चारो दिशाओं के और चारों जातियों के लोगों के लिए खुला था और इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समान रूप से आ सकते थे। उन्होंने जालन्धर दोआब में करतारपुर भी बसाया और तरनतारन में गुरुद्वारा स्थापित किया। उन का सबसे बड़ा काम 'ग्रन्थ साहिब' का सम्पादन है। वे स्वयं अच्छे कवि थे जैसा कि उनकी 'सुखमारी' नाम की रचना से स्पष्ट है। अतः उन्होंने गुरुवाणी को इकट्ठा कराकर रागबद्ध रूप से कायदे के साथ सज्जित किया। इससे सिखों के शास्त्र को मूर्तरूप मिल गया। कहते हैं कि एक बार किसी ने अकबर से शिकायत की कि इस ग्रन्थ में इस्लाम और अन्य धर्मों की निन्दा की गई है। इस पर इन्होंने गुरु अर्जुन को बुलवाकर इस बारे में पूछा। गुरु जी ने ग्रन्थ खोल कर कहा कि इसे चाहे जहां से

पढ़वा लो। उसे अटकल से खोलकर अकबर ने एक जगह हाथ रख दिया। वह भाग पढ़ा गया और उसमें भगवान की स्तुति मिली। अकबर ने प्रसन्न होकर ग्रन्थ साहिब पर इक्यावन मोहरों की भेंट चढ़ाई और गुरु जी को सम्मानार्थ वस्त्र भेंट किए। एक बार उन्होंने देहली लौटते हुए गोइन्द्रवाल में गुरु के लंगर में भोजन भी किया। किन्तु उनका उत्तराधिकारी जहांगीर दूसरी तबीयत का आदमी था। उसे गुरु जी की तहरीक पसन्द न थी। वह इसे कुफ़ समझता था। शाहज़ादे खुसरो को गुरु जी की जो साधारण रूप से शरण मिली थी इससे वह और भी नाराज़ था। इसलिए उसने गुरु जी को पकड़वाकर उन पर अमानुषिक अत्याचार किए। उन्हें तपती लोहे कीं चादरों पर बिठाया गया और उन पर जलता रेत डाला गया और उनके फफोलों से भरे हुए शरीर को रावी के ठण्डे पानी में डुबाया गया।

गुरु हरगोविन्द का कार्य

गुरु अर्जुन के इस बलिदान ने सिक्ख संगठन की काया पलट दी और इसकी प्रेम और भक्ति की चर्या को सैनिक चोला पहना दिया। इसलिए छटे गुरु हरगोविन्द (१६०६–४४) ने माला और कण्ठी के बजाए दो तलवारें रखनी शुरू कीं। एक आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक के रूप में और दूसरी लौकिक प्रभुत्व के चिह्न की शक्ल में। उन्होंने सब 'मञ्झियों' के 'मसण्डों' (धर्म प्रचारकों को आदेश दिया कि सब सिक्ख नज़र के रूप में घोड़े और हथियार पेश करें। उन्होंने पांच सौ सिक्खों की फौज तैयार की और उसके सौ-सौ सिपाहियों के दस्तों को बिधिचन्द, पिराना, जेठा, प्यारा और लंघा की कमान में संगठित किया। साथ ही उन्होंने अमृतसर में लोहगढ़ का किला बनवाया, हरमन्दिर के सामने लौकिक कार्यों की देख-रेख के लिए अकाल तख्त कायम किया और उसके अहाते में कसरत, परेड आदि की व्यवस्था की। तमाम पंजाब में वीरता का जोश उमड़ आया। जहांगीर ने गुरु जी को ग्वालियर के किले में बंदी किया। लेकिन आखिर में उनके सम्बन्ध अच्छे हो गए। गुरु जी को, और उनके कहने पर किले के सब बन्दियों को रिहा कर दिया गया। गुरु जी ने कश्मीर से नानकभट्ट तक की यात्रा की और शिवालिक पहाड़ियों में कीरतपुर नाम का शहर बसाया; और उसमें मन्दिरों के अलावा मस्जिदें भी बनवाईं, जिससे साफ जाहिर है कि उनका मन साम्प्रदायिक भेदभाव से बिल्कुल अछूता था। शाहजहां के गद्दी पर आते ही धार्मिक कट्टरता ने फिर जोर पकड़ा। लाहौर में सिक्खों की बावली को आंट कर उस पर मस्जिद बनाई गई। जल्दी ही शाहजहां की गुरु जी से टक्कर हुई। उन्होंने एक बाज़ को पकड़ने के मामूली मामलों पर मुखलिस खां को अमृतसर पर बिना किसी सूचना के हमला करने के लिए भेज दिया। गुरु जी अपनी लड़की की शादी के प्रबन्ध में लगे थे। उन पर अचानक मारधाड़ शुरू हो गई।

लेकिन जहां आजकल खालसा कालिज है, उस मैदान में सिक्ख बहुत बहादुरी से लड़े और उन्होंने मुखलिस खाँ का काम तमाम कर दिया। कुछ समय बाद जब गुरु जी करतारपुर थे तो जालंधर के फौजदार ने फिर उन पर धावा किया, लेकिन बुरी मार खाई। गुरु जी को मेहराज में एक रोमांचकारी सफलता मिली। जब उन्होंने लल्ला बेग काबुली और कमर बेग को परास्त किया। इस युद्ध में १२०० सिक्ख वीर गति को प्राप्त हुए, लेकिन लल्ली बेग भी काम आया। एक बार और गुरु जी को मुगल नेता काले खां के विरुद्ध विजय मिली। इन विजयों से सिक्खों का आत्म-विश्वास और सम्मान बढ़ गया और गुरु जी के जीवन के अंतिम दस वर्ष कीरतपुर में आराम से बीते।

गुरु हर राय और हर किशन

सातवें गुरु हर राय (१६४४–६१ ई०) के ज़माने में कोई लड़ाई नहीं हुई लेकिन संगठन का कार्य जारी रहा। आठवें गुरु हरकिशन (१६६१–६४ ई०) बच्चे ही थे जब उन्होंने गद्दी सम्भाली। पर उन्होंने बहुत होशियारी से काम किया। उनकी बुद्धिमानी का सबसे बड़ा काम यह था कि उन्होंने अपने नज़दीकी रिश्तेदारों को हटा कर तेग बहादुर को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया जो नवें गुरु बने।

गुरु तेग बहादुर की कुर्बानी

गुरु तेग बहादुर (१६६४–७५ ई०) गुरु अर्जुन के पौत्र थे और उनका जीवन भी उन्हीं की तरह बीता। उनके ज़माने में औरंगज़ेब का दमन चक्र चल रहा था। हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जा रहा था। जब कश्मीर के कुछ पण्डितों को इस्लाम ग्रहण करने के लिए मजबूर किया गया तो वे आनन्दपुर आकर गुरु जी से मिले। गुरु जी ने कहा कि किसी महापुरुष के बलिदान के बिना हिन्दू धर्म की रक्षा मुमकिन नहीं है। उस वक्त उनके पुत्र बालक गोविन्द सिंह पास ही खड़े थे। उन्होंने छूटते ही कहा 'पिता जी ! तो आप से बढ़कर दूसरा महापुरुष और कौन होगा'। गुरु जी को बेटे की बात चुभ गई। उन्होंने फौरन बलिदान की सोच ली। औरंगज़ेब को लिख दिया गया कि अगर गुरु तेग बहादुर इस्लाम ग्रहण कर लेंगे तो और लोग भी मुसलमान बन जाएंगे। औरंगज़ेब ने गुरु जी को दिल्ली बुलवाया और उन्हें इस्लाम ग्रहण करने को कहा। लेकिन गुरु जी का इन्कार स्पष्ट था। अतः उन्है ११ नवम्बर १६७५ ई० को दिल्ली के चांदनी चौक में शहीद किया गया और उनके साथी भाई मतिदास को आरे से चीर कर दो कर दिया। इस तनाव की हालत में १६७५ ई० में उनके पुत्र गोविन्द सिंह दसवें गुरु बने।

गुरु गोविन्द सिंह द्वारा खालसा दल का निर्माण

जब गुरु तेग बहादुर पूर्वी भारत का दौरा कर रहे थे और उनका परिवार पटना में ठहरा हुआ था तो वहां १६६६ ई० में गोविन्द सिंह का जन्म हुआ। पांच वर्ष वहां रह कर वे आनन्दपुर आए और सातवें वर्ष में पढ़ने बैठे। साहिब चंद ग्रन्थी ने उन्हें संस्कृत और हिन्दी पढ़ाई और काज़ी पीर मुहम्मद ने फारसी सिखाई। उन्होंने जल्दी ही इन भाषाओं पर अधिकार कर लिया। शुरू से ही उन्हें साहित्य का जो शौक हुआ वह अन्त तक रहा। नौ वर्ष की आयु में जब उनके पिता दिल्ली में शहीद हुए तो उनके कन्धों पर पंथ का भार आ पड़ा, जिसे उन्होंने बड़ी बहादुरी से निभाया। उनकी बढ़ोतरी से पहाड़ी रियासतों के कुछ राणा नाखुश थे। उनकी जाति-रहित व्यवस्था, विशेषत: लंगर की प्रथा, उन्हें अखरती थी। इसलिए उन्होंने ई० १६८६ में उनके यमुना पर स्थित पाओटा नाम के स्थान पर हमला कर दिया। गुरु जी ने मंगानी में उन्हें करारी मार दी। अन्त में उन्होंने औरंगज़ेब से मदद चाही। इस खतरे को देखते हुए गुरु जी ने सिख-पंथ का कायाकल्प किया। ३० मार्च १६९९ ई० को बैसाखी के दिन जब चारों तरफ से सिख आनन्दपुर साहिब में जमा हुए तो वे नंगी तलवार लेकर उनके पास आए और बोले कि मेरी तलवार एक सिर मांगती है, मेरे सच्चे सिक्खों में से कोई सामने आए। यह सुनकर सब तरफ सन्नाटा छा गया। सब लोग एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। जब गुरु जी ने तीसरी बार पुकार की तो लाहौर के दयाराम उठे और बोले कि 'मेरे सच्चे बादशाह, मेरा सिर हाज़िर है'। गुरु जी उन्हें लेकर एक तम्बू में गए और वहां से टपकते खून से सनी तलवार लेकर बाहर निकले। दोबारा उन्होंने सिर मांगा। कुछ लोग कानाफूसी करने लगे और सभा से खिसकने लगे, लेकिन दिल्ली के धर्मदास ने हाथ जोड़ कर अपने आपको पेश किया। इसी तरह गुरु ने तीन दफा और सिरों की मांग की और द्वारका के मौहकमचन्द, जगन्नाथपुरी के हिम्मत और बिदर के जगन्नाथ सिर देने के लिए सामने आए। ये पांच व्यक्ति 'पंज प्यारे' कहलाए। इनसे पहला 'खालसा दल' (पवित्र दल) बना। इसके बाद गुरु जी ने एक लोहे के बरतन में पानी भरकर उसे ग्रंथ साहब के भजनों के पाठ के साथ अपनी दुधारी तलवार से चलाया। उनकी पत्नी जितोजी ने उसमें चीनी डाली। इन 'पंज प्यारों' ने इसमें से पांच-पांच चुल्लू पी। तब से अमृत छकने की रस्म शुरू हुई। गुरु जी ने उन्हें केश, कंघा, कड़ा, कच्छा और कृपाण रखने की हिदायत की और गरीबों की मदद करने, ज़ालिमों का सफाया करने, सब लोगों को जाति-पांति के भेद के बिना बराबर समझने ओर 'इक ओंकार' या अकाल-पुरुष' में श्रद्धा रखने का आदेश दिया। इन 'पंज-प्यारों' ने अन्य सिखों को भली प्रकार दीक्षा दी। उसी दिन करीब

बीस हज़ार आदमियों ने अमृत चखा और दीक्षा ली। सिख ग्रंथ 'खालसा-दल' नाम का सैनिक संगठन बन गया। साथ ही गुरु जी ने 'मसण्डों' को अपदस्थ किया, क्योंकि उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायतें थीं।

गुरु गोविन्द सिंह का मुगल साम्राज्य से संघर्ष

पहाड़ी रियासतों के राणाओं और औरंगज़ेब के लाहौर और सरहिन्द के सूबेदारों की सेनाओं ने १७०१ ई० में आनन्दपुर में गुरु जी पर हमला किया। सिक्ख बहुत बहादुरी से लड़े, लेकिन आखिर में गुरु जी को आनन्दपुर छोड़ना पड़ा। अम्बाला ज़िले के चमकौर नाम के स्थान पर उन्होंने फिर मुगल सेना का मुकाबिला किया। २२ दिसम्बर १७०४ ई० को घमासान युद्ध हुआ, जिसमें गुरु जी के दो बड़े लड़के स्वर्ग सिधारे। उनके दो छोटे लड़कों को सरहिन्द के सूबेदार ने ज़िन्दा दीवार में चिनवा दिया और बेहोशी की स्थिति में उन्हें दो दिन बाद भयानक अत्याचार के साथ कत्ल कराया। किन्तु गुरु जी के हौसले में फर्क न आया। वे दक्षिण-पूर्वी पंजाब में संगठन का कार्य करते रहे। नाभा रियासत के दीना नामक स्थान से उन्होंने औरंगज़ेब को फारसी पद्य में 'जफरनामा' शीर्षक पत्र लिखा, उसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि उन्हें मजबूरी में अत्याचारी शासन से तंग आकर तलवार उठानी पड़ी। उन्होंने अपने चार पुत्रों की हत्या का ज़िकर करते हुए लिखा :

चिहा शुद कि चूं बच्चगां कुशता: चार।
कि बाकी बिमांदस्त पेचीदा: मार॥
चि मरदी कि अखगर खमोशां कुनी।
कि आतश दुमारा बदूरा कुनी॥

[क्या हुआ कि इस तरह चार बच्चे मार डाले गए, (याद रखिए) कि अभी भयानक सांप बचा हुआ है कोई आग थोड़ी देर के लिए दबा सकता है, लेकिन वह फिर और ज्यादा धधक उठती है।[

पत्र के अंत में उन्होंने अपना अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष जारी रखने का संकल्प दोहराया :

बिदिह साकिया सागरे सब्ज रंग।
कि मा रा बकारस्त दर वक्त जंग॥
बमन दिह कि बख्त-आजमाई कुनम।
जि तेगे खुदश कारवाई कुनम॥

[हे मधु पिलाने वाली, मुझे हरे रंग का मद्यपात्र दे, जो युद्ध में मेरे काम आए,

मुझे वह प्याला दे, जिससे मैं अपना भाग्य आज़मा सकूं और अपनी तलवार के करिश्मे दिखा सकूं।]

मुगल सेना बराबर गुरु जी का पीछा करती रही। खिदराना (मुक्तसर) में जमकर मुकाबिला हुआ, जिसमें मुगल सेना को पीठ दिखानी पड़ी। इस बीच में औरंगज़ेब के पास से गुरु जी को बुलावा आया। वे उनसे मिलने के लिए दक्षिण की ओर चले, लेकिन राजस्थान पहुंच कर पता चला कि सम्राट् की मृत्यु हो चुकी है। अतः वे देहली लौट आए। वहां शहज़ादे मुअज़्ज़म ने अपने भाई आज़म के खिलाफ गुरु की मदद चाही। गुरु जी ने धर्म सिंह की कमान में सिखों की एक फौज भेजी। जजौ की लड़ाई में १८ जून १६६० ई० को आज़म मारा गया और मुअज्ज़म बहादुर शाह के नाम से दिल्ली का सम्राट् बना। उसने गद्दी पर बैठते ही गुरु जी की बहुत इज्जत की और उनके पास सम्म.नसूचक वस्त्राभूषण भेजे। इसके फौरन बाद ही बहादुरशाह को अपने भाई कामबख्श के विद्रोह को दबाने के लिए दक्षिण जाना पड़ा। अतः गुरु जी भी दक्षिण गए, जिससे बहादुरशाह से स्थायी संधि की जा सके और सब धर्मों की स्वतंत्रता की रक्षा हो सके।

वीर बन्दा बैरागी से भेंट

गोदावरी के तट पर नन्देर में एक बैरागी साधू माधोदास उनका शिष्य बन गया और बाद में बंदा बहादुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लेकिन वहां सरहिन्द के नवाब वज़ीर खां के भेजे हुए दो पठान हत्यारों ने गुरु जी पर खंजर से हमला कर दिया। उन्होंने एक हत्यारे को तो खुद ही दबोच कर मार दिया और दूसरे की उनके साथियों ने चटनी कर दी। लेकिन उनकी छाती में गहरा घाव हो गया। बहादुरशाह ने उनके इलाज के लिए कई सर्जन भेजे, जिन में एक अंग्रेज़ कौल नाम का भी था। इनके इलाज ने उनका घाव भर गया, किन्तु एक दिन एक कड़े धनुष को झुकाते हुए वह जख्म फिर फट गया और उससे ७ अक्तूबर १७०८ को गुरु जी का शरीर पूरा हो गया।

गुरु गोविन्द सिंह का धर्म

गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्ख धर्म को नया रूप दिया और अत्याचार तथा शोषण को दूर करने का सशक्त साधन बनाया। वे ऋद्धि-सिद्धि, योग और तपस्या के खिलाफ थे। उनकी दृष्टि में जीवन का सबसे बड़ा आदर्श धर्म युद्ध करना और उसमें अपने प्राणों का उत्सर्ग करना था। उन्होंने 'कृष्णावतार' में भगवान से वर मांगा है :

ग्रौ सब सिद्धिन सिद्धिन पै,
हमरौ नहि नैकु हिया ललचावै।
ग्रौर सुनो कुछ जोग बिखै कहि,
कउन इतो तपकै तन पावै।
जूझ मरौं रन में तजि भय,
तुमसे प्रभु श्याम इहै वर पावै।

भगवान का स्मरण करना ग्रौर धर्मयुद्ध का विचार करना उनके लिए मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग था। इसी कृति में वे कहते है :

धन्य जीउ तहि को जग में,
मुख ते हरि चित्त में जुद्ध विचारै।
देह ग्रनित्त ना नित्त रहै,
जस नाव चढ़ै भव सागर तारै।

इस ग्रादर्श के प्रतिपादन के लिए उन्होंने श्रीमद्‌भागवत् के दशम स्कन्द की कथा ब्रज-भाषा में लिखी :

दसम कथा भागवत की भाखा करी बनाइ।
ग्रवर वासना नाहि प्रभ धर्म-युख के चाइ॥

किन्तु जिस धर्म के लिए मर मिटने की उनमें उत्कट उत्कण्ठा थी, वह मानव-मात्र की एकता ग्रौर समानता पर निर्भर है ग्रौर उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता या साम्प्रदायिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। 'ग्रकाल उसतति' में वे कहते हैं :

हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी,
मानस की जात सबै एकै पहिचानवो।
देहरा मसीत सोई पूजा ग्रो निवाज ग्रोई,
मानस सबै एक पै ग्रनेक को भ्रमाउ है।
देवता, ग्रदेव, जछ, गंधर्व, तुरक हिन्दू,
नियारे निसारे देशन के भेष को प्रभाउ है।
ग्रलह ग्रभेख सोई पुरान ग्रौ' कुरान ग्रोई,
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है।

[हिन्दू-मुसलमान, शिया-सुन्नी, मनुष्य की सभी जातियां एक जैसी हैं। मन्दिर, मस्जिद, पूजा ग्रौर नमाज़ सब एक जैसे हैं। सब मनुष्य एक जैसे हैं केवल भ्रमवश ग्रनेक दीखते हैं। देवता, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, मुसलमान, हिन्दू का ग्रंतर विभिन्न देशों में वेशों के

प्रभाव के कारण है। पुराण और कुरान दोनों में अल्लाह और ईश्वर का वर्णन है, उसका एक ही रूप और स्वरूप है।]

किन्तु जब कोई धर्म साम्प्रदायिक रूप धारण कर राजनीतिक अत्याचार या आर्थिक शोषण का साधन बन जाए तो वह निन्द्य है और उसका विरोध करना कर्तव्य है। गुरु जी ने मुगल शासन और उससे सम्बधित मुसलमानों का इसीलिए विरोध किया कि वे छोटे वर्गों के लोगों को मारते-पीटते और डराया-धमकाया करते थे। उन्होंने इस दृष्टि से मुगलों, का पहाड़ी रियासतों के राजपूत राजाओं का भी विरोध किया। वास्तव में गुरु जी एक उदात्त मानवीय आदर्श के समर्थक थे जो धार्मिक कट्टरता से कोसों दूर है।

गुरु गोविन्द सिंह की साहित्यिक और सांस्कृतिक देन

गुरु गोविन्द सिंह ने अपने जीवन-चरित्र को 'विचित्र नाटक' कहा है। असल में वे विचित्र ही थे। अद्भुत संगठन कर्त्ता, अनोखे योद्धा, बिलक्षण विद्वान्, गम्भीर दार्शनिक, महान् साहित्यकार और मर्मस्पर्शी कवि—उनके व्यक्तित्व के ये अनेक रूप पूर्णतः समन्वित थे। उन्होंने ब्रजभाषा में जो कविताएं लिखीं वे हिन्दी साहित्य की अमर निधि हैं। ये सब कविताएं प्राचीन भारतीय कथानकों को लेकर चली हैं। भागवत् के दशम स्कन्ध में वर्णित अवतारों की कथा, विशेष रूप से राम और कृष्ण का चरितगान और दुर्गा द्वारा राक्षसों के दमन का वृत्तान्त. उनके काव्य का विषय हैं। उन्होंने पौराणिक आख्यानों को वीर रस से ओत-प्रोत कर अपने समय के धार्मिक उद्बोधन का माध्यम बनाया। उनमें शैव, वैष्णव और शाक्त तत्वों का एकीकरण है। यह मानना कि उन्होंने अनादिकाल से चलती हुई भारतोय परम्परा से भिन्न कोई सम्प्रदाय स्थापित किया, सर्वथा अनुचित है।

वीर बन्दा वैरागी के कर्त्तृत्व पर एक दृष्टि

क्षितीश वेदालङ्कार

उस दिन दिल्ली नगरी की सजावट कुछ अनोखे ही ढंग की थी। राज पथ के दोनों ओर मनुष्यों की इतनी भीड़ थी कि दूर तक नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड दीखते थे। लगातार आठ महीने तक अत्यन्त स्वल्प साधनों और मुट्ठी-भर अनाज पर निर्वाह करते हुए शाही सेना के तीस हज़ार सैनिकों की जान आफत में डाले रखने वाले गुरु बंदा वैरागी के सैनिक बंदी बनाकर दिल्ली लाये जा रहे थे।

चांदनी चौक के सिरे पर सबसे पहले मुगल सैनिक दिखाई दिए—उनके भालों के ऊपर सैकड़ों सिर लटक रहे थे और उन सिरों से खून टपकता जा रहा था। उनके पीछे, एक हाथी पर लोहे के पिंजरे में सांकलों से कसे हुए बंदा वैरागी का वीर देह दिखाई दिया। उसके मुख पर किसी प्रकार के भय का कोई लेश भी नहीं था। उसने जो लम्बा चोगा पहन रखा था उस पर दाड़िम के फूलों की सी सुन्दर फुलवाड़ी कढ़ी थी। सिर पर लाल पाग शोभित थी—मानो हृदय के रंग से रंगी हुई हो। बंदा के पीछे नंगी तलवार लिए एक अमलदार खड़ा था।

पीछे-पीछे चले आ रहे थे सात सौ चालीस सैनिक—किसी के भी चेहरे पर उदासी का नाम नहीं परिणाम को सोचकर पश्चात्ताप की भावना नहीं।

कोमल मन के बच्चों और माताओं की आंखों में इस दृश्य को देखकर आंसू उमड़े होंगे। किसी-किसी ने उपहास भी किया होगा। राजभक्त प्रजा के अंश के रूप में किसी ने कहा होगा—"जैसी करनी वैसी भरनी—बादशाह से दुश्मनी मोल ली है तो उसका फल भी चखो।" पर बन्दियों में से किसी एक के भी चेहरे पर कोई विकार नहीं था। सब के कण्ठों से एक ही आवाज़ आ रही थी—'अलख निरंजन!'

× ×

चबूतरे पर प्रतिदिन एक सौ बन्दियों के सिर धड़ से अलग किए जाते थे। प्रत्येक बन्दी निर्भय और प्रसन्न मुख-मुद्रा से जल्लाद के सामने आता और आगे बढ़कर कहता कि "पहले मैं, पहले मैं।" यह वीर-वाणी दिल्ली नगरी के कोट-कंगूरो के ऊपर से होती हुई सुदूर पंजाब के मैदानों तक फैल गई। तभी एक वृद्धा स्त्री ने दिल्ली में प्रवेश किया। थकान, भूख, परिताप, दुःख और हृदय में भरी हुई महावेदना से व्याकुल पर किसी अज्ञात आशा-तन्तु के सहारे लटकते अस्थि-पंजर-सी वह बुढ़िया।

अपने जवान बेटे को मौत से बचाने के लिए उसने बादशाह फर्रुखसियर से

भेंट का प्रयत्न किया। जब बादशाह से भेंट न हो सकी तो उसने दीवान रतनचंद की मार्फत सैयद अब्दुल्ला खां वजीर के पास दरखास्तों की झड़ी लगा दी। उसने आंसुओं से पृथ्वी को भिगो दिया और अपने जवान पुत्र को बचाने के लिए आकाश-पाताल एक कर दिया।

"मेरा इकलौता बेटा है। बड़ा भोला है। वह लड़ाई में शामिल नहीं था। सिख उसे पकड़ ले गए और उन्हीं के साथ वह बन्दी बनाकर लाया गया, वह गुरु का सैनिक नहीं था। मेरा एक ही बेटा है—उसे छोड़ दो, उसे छोड़ दो। मुझे वापिस सौंप दो। मैं अपने खेत में पेड़ की छाया के नीचे उसे रोटी खिलाऊंगी—मेरा बेटा मुझे सौंप दो!"

वृद्धा के आर्तनाद से सैयद अब्दुल्ला खां वज़ीर का दिल पिघल गया। उसने बादशाह से कह-सुनकर माफीनामा प्राप्त करके बुढ़िया को दे दिया।

× ×

वृद्धा माता बादशाही माफीनामा लेकर एक अमलदार के साथ वध-स्थल के चबूतरे के पास पहुंची। सौ मनुष्यों की कतार खड़ी हुई थी—और इतने दिनों से बुढ़िया का मातृ-हृदय जिसके लिए लगातार तड़प रहा था वही, दूध-भरे होंठों वाला, कुंवर कन्हैया जैसा सहज श्यामल, नखशिख रूप रूप से भरा, उसका जवान बेटा, ठीक जल्लाद की तलवार के पास खड़ा था। उस वक्त उसकी ही बारी थी……

कोतवाल ने वृद्धा स्त्री के कांपते हुए हाथ से शाही फरमान लिया और उस पर एक नज़र डाली। वृद्धा की आंखों से सावन-भादों की झड़ी लगी थी।

कोतवाल ने तुरन्त जल्लाद को रुकने का आदेश देकर उसके पास खड़े जवान को इशारे से अपने पास बुलाया और उससे कहा "यह तेरी माता है। जा, तुझे बादशाह की ओर से माफी मिली है। तेरी माता ने लिखकर दरखास्त की थी कि मेरा लड़का लड़ाई में शामिल नहीं था, वह गलती से सिख-सैनिकों के साथ बन्दी बना लिया गया।"

और जैसे किसी एकाकी वज्रशिला पर बिजली गिरती है वैसे ही रौद्र रूप धारण कर उस जवान ने जवाब दिया—"कौन मां? किसकी मां? मेरी मां तो केवल एक ही है—और वह है यह भारत माता!"

"तो, तू भी गुरदासपुर की लड़ाई में शामिल था?"

सैनिक ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—"हां।"

जिस लड़ाई में उसके अन्य साथी घास और पत्ते खाकर, और अन्त में मृत-पशुओं की हड्डियां खाकर लड़ते रहे, मोर्चे से हटे नहीं, उसी में वह भी शामिल था। इन सैनिकों का राशन समाप्त हो गया था, वीरता नहीं। उसने फिर दृढ़ता से दुहराया—"हां, मैं उस लड़ाई में शामिल था।"

शोकभार से दबी वृद्धा माता के मुख से कांपती हुई आवाज़ निकली—"बेटा…" और वह आवाज़ अन्त:करण को कंपा देने वाले महाविलाप की तरह वायुमडण्ल में गूंज गई।

सैनिक बेटे ने वज्रवाणी में जवाब दिया—

"मां! ओ मां! गुरु गोविन्दसिंह ने अपने चार-लार पुत्र निछावर कर दिए और तुम से एक पुत्र का भी मोह नहीं छूटता?—अपने इन सात सौ चालीस भाइयों को छोड़कर क्या मैं यहां से अकेला ही वापिस चला जाऊं?……मां! जाओ, लौट जाओ। मुझे अब इस मुक्ति में से वापिस मत लौटाओ।…… जाओ मां, जाओ। जब तुम मुझे याद करोगी तब अपने खेत के उस जामुन के पेड़ के नीचे, किसी-किसी चांदनी रात में, मैं तुमसे मिलने चला आया करूंगा।……जाओ, मां! जाओ!"

हड्डियो को पीसकर उनका आटा बनाकर खाते हुए भी जिनकी छाती कम्पायमान नहीं हुई थी उन में से भी अनेक लोगों की आंखें गीली हो आयीं।

पर तब तक तो सिंह-शावक की तरह कूदकर वह जवान जल्लाद की तलवार के नीचे जाकर खड़ा हो गया और खिलखिलाकर हंसता हुआ बोला—"ओ मुक्त! क्या देखता है। आज तो पहले मैं!"…… चलाओ…… वाह गुरु की फतह!!"

\+ \+

अब से अनेक वर्ष पहले गुजराती के स्वनामधन्य लेखक धूमकेतु (अब स्वर्गीय) की यह रचना पढ़ी थी और इसने हृदय को इतना प्रभावित किया था कि कई दिन तक बन्दा वीर वैरागी के उस सैनिक की तस्वीर आंखों के आगे झूलती रही। इस रचना के कारण ही धूमकेतु की 'जल बिन्दु' नामक गुजराती पुस्तक मेरी अन्यन्त प्रिय पुस्तकों में शामिल हो गई और बाद में तो वह ऐसी भायी कि मन को तब तक चैन नहीं आया जब तक स्वयं गुजराती का पत्किंचित् अभ्यास करके उस पूरी पुस्तक का हिन्दी भाषान्तर नहीं कर दिया।

जिसने ऐसे तेजस्वी सैनिकों का निर्माण किया हो उस बन्दा वैरागी का व्यक्तित्व क्या सामान्य होगा? उसके बलिदान की गाथा का चित्रण करके कितने कवियों ने अपनी लेखनी धन्य की है! पर उन अकृतज्ञ इतिहासकारों को क्या कहा जाये जिन्होने जाने या अनजाने उस महनीय व्यक्ति के चरित्र को अपने रंगीन चश्मे के माध्यम से देखने का प्रयत्न किया और नई पीढ़ी के सामने उसकी तस्वीर धुंधली कर दी। कदाचित जहां कवि अन्धे होते हैं वहां इतिहासकार को उसकी कसर पूरी करनी पड़ती है और जहां इतिहासकार अन्धे होते हैं वहां कवियो को वह कसर पूरी करनी पड़ती है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

कइयों को यह बात विचित्र लग सकती है कि संसार से विरक्त होकर एकान्त में तपस्यालीन माधवदास वैरागी इतना खूंखार योद्धा कैसे बन गया! किसी को यह बात भी उलझन-भरी लग सकती है कि अपनी किशोरावस्था में हिरनी के शिकार के समय उसके पेट से निकले दो मासूम बच्चों को तड़प-तड़प कर प्राण देते हुए देखकर जिसका कोमल हृदय इतना विचलित हो गया कि उसने घर बार छोड़ कर साधु का बाना धारण कर लिया, वही व्यक्ति इतना कठोर-हृदय कैसे बन गया कि विधर्मियों और आततायियों का खून पीने के लिए उसकी तलवार हमेशा प्यासी रहती! साधु के रूप में कीड़े-मकोड़े तक की हिंसा से परहेज़ करने वाला व्यक्ति इतना नृशंस कैसे बन गया कि संस्कृति और धर्म के विध्वसकों का विध्वंस करने में उसने कभी दया-माया नहीं बरती!

पर सन्तों के चरित्र का जिन्होंने अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि उनका हृदय जितना कोमल होता है, उतना ही कठोर भी होता है। ऐसे ही व्यक्तियों को लोकोत्तर चरित्र का धनी कहा गया है। तभी तो महाकवि भवभूति ने कहा है —

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोनु विज्ञातुमहति ॥

(वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल हृदय वाले सन्तों के चरित्र की थाह कौन पा सकता है?)

आध्यात्मिकता और सांसारिकता को प्रायः परस्पर विरोधी समझा जाता है। वैदिक धर्म ने इन दोनों के सवन्वय को ही आदर्श माना है। इसीलिए अभ्भुदय (लौकिक उन्नति) और निःश्रेयस (आध्यात्मिक उन्नति) ये दोनों ही मिलकर 'धर्म' शब्द को सार्थक करते हैं। केवल अभ्युदय या केवल निःश्रेयस एकांगी है, वह जीवन को लंगड़ा बनाने वाला है। मानव-जीवन की परिपूर्णता इन दोनों के समन्वय के बिना सम्भव नहीं है। भारतीय ऋषियों का यही आदर्श रहा है। उनकी दृष्टि में न लोक उपेक्षा का पात्र है, न ही परलोक।

अलबता लोकायतिक (चार्वाक) विचारधारा केवल इस लोक में ही विश्वास करती है ('सेक्युलर' शब्द का अभिप्राय भी यही है, भ्रमवश उसका अर्थ धर्म-निरपेक्ष कर दिया जाता है); परलोक, पुनर्जन्म, आत्मा, परमात्मा और परोक्ष वस्तु में आस्था उसे रास नहीं आती। इसीलिए धर्म-कर्म, आध्यात्मिकता या अमूर्त (Abstract) उसके लिए त्याज्य है। दूसरी ओर निवृत्तिमार्ग के उपासक और श्रमण-संस्कृति के अनुयायी प्रवृत्तिमार्ग को दूषित मानते हैं, ज्ञान-वैराग्य-भक्ति की साधना करते हुए उन्हें समस्त कर्म-काण्ड निरा पाखण्ड प्रतीत होता है। उन्हें संसार को मिथ्या समझकर आत्म-रति

में जितना आनन्द मिलता है, संसार को सत्य समझकर उसमें विद्यमान विपरीत परि-स्थितियों से जूझने से उनको उतनी ही वितृष्णा होती है।

परन्तु वैदिक संस्कृति के प्रतिनिधि ऋषि लोग न संसार त्यागी थे, न ही वैरागी। शस्त्रास्त्र से भी उन्हें घृणा नहीं थी। उन्हें मालूम था कि हृदय की कोमलता का क्षेत्र कौनसा है और हृदय की कठोरता का कौनसा। ऐकान्तिक-कोमलता के पर्याय अहिंसावाद ने उनकी दृष्टि को धूमिल नहीं किया था और ऐकान्तिक कठोरता के हिंसावाद ने उनको वन्य-पशुओं-सा अविवेकी और हिंस्र नहीं बनाया था। यदि अहिंसा और दया के क्षेत्र में हिंसा उनके लिए वर्जित थी तो आततायी से युद्ध करते हुए अहिंसा भी उनके लिए वर्जित थी। 'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्'—यदि कोई संस्कृति और राष्ट्र का अपघात करने के लिए आये तो बहुत तर्क-वितर्क में बिना पड़े उसके वध करने का उपदेश ऋषि लोग ही दे सकते थे और इस उपदेश से भी उनके सन्तपने में बाधा नहीं आती थी।

ऋषियो के इस आचरण में परस्पर-विरोधी ढूंढना उनके साथ अन्याय करना है। हम यह नहीं कहते कि वैदिक ऋषियों के साथ ऐसा अन्याय नहीं किया गया है। स्वदेशीयों और परदेशीयों ने यह अन्याय खूब किया है, कभी जानबूझकर और अधिकतर अज्ञानवश।

ब्रह्म और क्षत्र

वेद के ऋषियों की जो विशिष्ट विचारधारा है उसे वेद के शब्दों में ही इस प्रकार कहा जा सकता है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

जहां ब्रह्म और क्षत्र दोनों साथ-साथ चलते हैं और जहां सौम्यमूर्ति देवता लोग भी अग्निमय बनकर रहते हैं उसी को पुण्य-लोक समझना चाहिए। जो राष्ट्र ब्रह्म-शक्ति अर्थात ज्ञान-बल की उपेक्षा कर देते हैं, वे पुण्यलोक नहीं बन सकते, क्योंकि वहां अज्ञानियों की भरमार हो जाएगी। और जो राष्ट्र क्षत्र-शक्ति अर्थात कर्म-बल की उपेक्षा कर देते हैं, वे भी पुण्यलोक के भागी नहीं बन सकते, क्योंकि वहां निकम्मे, कामचोर, आलसी और बातें बघारनेवाले लोगों की भरमार हो जाएगी।

इसी आदर्श को सामने रखते हुए भारतीय संस्कृति के सूत्रधार वैदिक ऋषियों ने घोषणा की थी—

अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

(मेरे आगे चारों वेद हैं, मेरी पीठ पर बाण से सन्नद्ध धनुष है। मेरे एक ओर ज्ञान-बल (ब्रह्म) है और दूसरी ओर कर्म-बल (क्षात्र), मैं शाप से भी काम लूंगा और शर-सन्धान से भी काम लूंगा।)

सच तो यह है कि कायर व्यक्तियों को अहिंसा शोभा नहीं देती। जैसे जराग्रस्त निर्दीर्य व्यक्ति के लिए ब्रह्मचर्य का कोई अर्थ नहीं, वैसे ही जिसमें हिंसा करने का सामर्थ्य ही नहीं है, उसकी अहिंसा का भी कोई अर्थ नहीं।

क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन
विषहीन विनीत सरल हो।

मानव-जीवन का साफल्य

वैदिक धर्म की इस विशेषता को एक और ढंग से भी समझना होगा।

मानव-जीवन का साफल्य किस चीज़ में है और संसार में उसके आने का क्या तात्पर्य है—विभिन्न विचारकों ने इस सम्बन्ध में अलग-अलग मत प्रकट किए हैं। कुछ कहते हैं कि मनुष्य का जन्म प्रकृति की कोई आकस्मिक घटना है। कुछ का विचार है कि सृष्टि मात्र ही निष्प्रयोजन है! कुछ मनीषी ऐसा समझते हैं कि जैसे बालक तरह तरह के खिलौनों से खेलता है और जब उनसे उकता जाता है तब उन सब खिलौनों को उठाकर फेंक देता है, वैसे ही किसी अज्ञात लीलाधर ने अपनी लीला-प्रवृत्ति को चरितार्थ करने के लिए सृष्टि में विद्यमान नाना जीवों और पदार्थों के रूप में ये तरह-तरह के खिलौने बना दिए हैं—चर और अचर की सृष्टि कर दी है और प्रलय के समय वही लीलाधर इन सब खिलौनों को तोड़-फोड़कर एक ओर फेंक देगा, लीला का विसर्जन हो जाएगा। क्या सृष्टि की, और सृष्टि के सबसे श्रेष्ठ प्राणी मानव की यही नियति है?

यदि हम सब की यही नियति हो तो ऐसा पर-वश जीवन हम क्यों जीएं? किसी दूसरे के हाथ का खिलौना बन कर ही यदि मनुष्य को जीना हो तो ऐसा जीवन किसके लिए स्पृहणीय होगा? यदि मनुष्य के स्वतंत्र कर्तव्य का कहीं स्थान न हो और वह विधाता के हाथ की कठपुतली-मात्र हो तो 'अहं ब्रह्मास्मिय' का दम्भ भी किस लिए? मनुष्य जो कुछ नहीं है उसका ही उसमें अन्तर करने की प्रवृत्ति क्या मनुष्य मन की मनोवैज्ञानिक दुर्बलता का सूचक नहीं है?

इस विषय में भी वैदिक धर्म का दृष्टिकोण स्पष्ट है। यह सृष्टि निष्प्रयोजन नहीं है। मानव-जीवन भी निरुद्देश्य नहीं है, इसलिए निरर्थक भी नहीं। यदि मानव जीवन निरुद्देश्य और निष्प्रयोजन होता तो इसे समाप्त करना बड़ा भारी पुण्य-कार्य

होता। किसी निरर्थक वस्तु का जीवन-काल जितना स्वल्प हो और उसे जितनी जल्दी समाप्त कर दिया जाए उतना ही अच्छा। तब आत्महत्या पाप नहीं पुण्य होती।

पाश्चात्य साहित्य के अनुशीलन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। शेक्सपीयर तथा अन्य महान् साहित्यकारों के साहित्य में आत्महत्या को खूब गौरवान्वित किया गया है। परन्तु भारतीय साहित्य से आत्महत्या को गौरवान्वित करने की बात तो दूर रही, संस्कृत-नाटकों में वैसे दृश्य का अंकन भी वर्जित है। ऐकान्तिक हिंसा की प्रचारक विचारधारा में हत्या दूषित कैसे हो सकती है? जैसे दूसरों की हत्या, वैसे ही अपनी भी हत्या। दोनों समान हैं। पर भारतीय संस्कृति की दृष्टि से छोटे से छोटे जीव की हत्या भी पाप है। पर उसमें अपवाद यह है कि किसी महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निःस्वार्थ भाव से किसी की भी हत्या पाप नहीं है—आत्महत्या भी नहीं। तब वह आत्महत्या नहीं होती, आत्म बलिदान होता है। मनुष्य के कर्म का निर्णय केवल उस कर्म के बाहरी रूप से नहीं होता, उस कर्म के पीछे छिपे आन्तरिक संकल्प और भावना से होता है। कही कारण है कि सामान्य नागरिक जीवन में किसी की हत्या करने वाले को फांसी की सज़ा दी जाती है पर राष्ट्र-रक्षा के लिए लड़े गए युद्ध में जो जितने अधिक शत्रुओं को धराशाही करता है, उसे उतने ही बड़े पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

इस संसार में केवल अच्छाई या बुराई नहीं है। यहां अच्छाई भी है और बुराई भी है। दोनों के अनुपात में अन्तर हो सकता है, पर जैसे अच्छाई शाश्वत है, वैसे ही बुराई भी शाश्वत है। सच तो यह है कि बुराई के अभाव में अच्छाई का भी मूल्यांकन न हो पाता। आखिर दोनों एक दूसरे की अपेक्षा से हैं। अच्छाई और बुराई के अस्तित्व के समान उनका संघर्ष भी शाश्वत है। अच्छाई बुराई पर हावी होना चाहती है और बुराई अच्छाई पर। अच्छाई और बुराई के इस संघर्ष का स्थल ही यह संसार है। इस प्रकार यह संसार देवासुर-संग्राम की चिरन्तन लीला-भूमि है।

राम-रावण युद्ध और कौरव पाण्डव युद्ध का वर्णन करने वाले हमारे महाकाव्य रामायण और महाभारत—इसीलिए चिरन्तन महाकाव्य हैं। उन महाकाव्यों में वर्णित कथावस्तु ऐतिहासिक होते हुए भी उसमें यह आध्यात्मिक तत्व भी निहित है। हमारे समस्त पौराणिक आख्यानों के पीछे इसी प्रकार आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन भी एक प्रमुख हेतु रहा है। हमारे पूर्वजों ने केवल भौतिक इतिहास—इस विस्तृत कालचक्र में घटित होने वाली घटनाओं का इतिवृत्तात्मक नीरस विवरण—कभी लेखबद्ध नहीं किया। इति+ह+आस (ऐसा हुआ) इस बात की चर्चा करने

का क्या लाभ जब तक उसमें 'ऐसा होना चाहिए' का भी संकेत न छिपा हो। इस प्रकार के आध्यात्म-समन्वित इतिहास को ही पूर्वजों ने इतिहास कहा है, आधुनिक अर्थ वाला इतिहास वहां दुर्लभ है। इस दृष्टि से 'इतिहास' और 'पुराण' ये दोनों बहुत कुछ पर्याय-वाची शब्द हैं। पुराण शब्द भी व्युत्पत्ति—'पुरापि नवम्' पुराना होने पर भी जो सदा नया रहे—इसी प्रकार के इतिहास के साथ सुसंगत होती है, क्योंकि ऐसा इतिहास कभी पुराना नहीं पड़ता। शास्त्रों में पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को मनुष्य-जीवन का लक्ष्य बताया है और उनकी प्राप्ति के लिए मानवात्मा को उचित रूप से प्रेरित करना ही इतिहास या पुराण का प्रयोजन है। इसी सन्दर्भ में यह बात ठीक बैठती है—

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहाया
महाजनो येन गताः स पन्थाः।

हमारे पूर्व-पुरुष जिस पथ पर चलते आए हैं, वही धर्म है और उन पूर्व-पुरुषों के चरित्र का ऐसा वर्णन ही—जिसमें पाप पर पुण्य की विजय दिखाई गई हो—इतिहास का मुख्य प्रयोजन है।

पुरुषार्थ का अर्थ ही है—पुरुष का प्रयोजन अर्थात् मानव-जीवन का उद्देश्य। पाश्चात्य संस्कृति भी मानव-जीवन के उद्देश्य की चर्चा करती है, पर वह अर्थ और काम से आगे नहीं बढ़ पाती। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से अर्थ और काम निषिद्ध नहीं हैं, पर उन पर धर्म का अंश लगा है। धर्मपूर्वक अर्थ और काम का सेवन ही मोक्ष प्राप्ति में सहायक हो सकता है, अधर्मपूर्वक अर्थ का सेवन नहीं। भौतिकवादी और अनात्मवादी संस्कृति के आजकल के सब से बड़े पुरोधा हैं—मार्क्स और फ्रायड। मार्क्स यदि अर्थ की प्राप्ति में धार्मिक मर्यादाओं का बन्धन स्वीकार नहीं करता, तो फ्रायड काम के सेवन में धार्मिक मर्यादाओं के बन्धन का उपहास करता है। अमर्यादित अर्थ और काम के सेवन की प्रवृत्ति ही आधुनिक अशान्त वातावरण की जननी है। इस वातावरण के प्रति आक्रोश संसार भर में है, किन्तु उसके निराकरण के लिए अर्थ और काम के निर्मयदित सेवन पर अंकुश लगाने को कोई तैयार नहीं। इसके विपरीत समझा यह जाता है कि सब प्रकार की मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न करके अर्थ और काम का सेवन करने से ही मानसिक तृप्ति और आत्मिक शान्ति उपलब्ध होगी किन्तु जैसे

हविषा कृष्णवर्त्मेव
भूय एवाभिवर्धते।

आग में घी डालने से उसकी लपट और ऊंची उठती है, वैसे ही मानसिक अशान्ति भी दिन प्रतिदिन उग्र से उग्रतर होती चली जाती है।

सार रूप से यों कहा जा सकता है कि पाप का पराभव कर पुण्य का विस्तार करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य है। स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् ने श्रीमद्भगवद् गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

जब जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं 'आत्मानं'—अपने आपको अर्थात् किसी न किसी योगी की ("योगीत्वात्मैव मे मतम्") योगी ही मेरी आत्मा है, ऐसा मैं मानता हूं।" यह उक्ति भी गीता की ही है, इसलिए 'आत्मानं' का अर्थ हुआ—'योगिनम्') रचना करता हूं।' यहां धर्म और अधर्म से क्या तात्पर्य है—इसका स्पष्टीकरण गीता में उक्त श्लोक से अगले श्लोक में ही कर दिया गया है, जो इस प्रकार है—

परित्राणाय साधूनां
विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय
सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थात् साधुओं का परित्राण और दुष्कृतों एवं असाधुओं का विनाश ही धर्म संस्थापना का मुख्य कार्य है। वेद के 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'—इस घोष में सभी संसार को आर्य बनाने की जो कामना की गई है, उसमें भी यही भाव निहित है। आर्य का अर्थ कोई जाति विशेष नहीं, न ही अनार्य का अर्थ कोई जाति विशेष है। आर्य और अनार्य दोनों गुणवाची शब्द हैं। इनको जाति-वाची केवल पाश्चात्य विद्वानों ने बनाया है, जो नितांत कपोल कल्पित हैं। आश्चर्य की बात यह है कि बहुत से भारतीय विद्वान् भी उच्छिष्ट-भोजी बनकर पाश्चात्य विद्वानों का अनुकरण करने में ही स्वयं को धन्य मानते हैं। मानव में सत्य, संयम, शौर्य, औदार्य आदि जितने गुण हैं, उन सबके समुच्चय का प्रतीक है—आर्य शब्द। इसके साथ ही 'सतत प्रगतिशील' इस शब्द का विशिष्ट अर्थ है। योगिराज अरविन्द घोष के कथनानुसार श्रेष्ठ गुण-युक्त मानव के सम्बोधन के रूप में वेद-वर्णित 'आर्य शब्द से बढ़कर उत्कृष्ट शब्द संसार भर के साहित्य में दुर्लभ है। इन गुणों के विपरीत आचरण वाला व्यक्ति अनार्य शब्द से सम्बोधित होगा। आर्य और अनार्य में रंग, रक्त, जाति या देश और काल का भेद नहीं है, भेद है केवल आचार और विचार का। एक ही देश के रहने वाले, समान रूप-रंग वाले, समान कुल और समान जाति के वंशज एवं सगे भाई भी परस्पर आर्य और अनार्य हो सकते हैं। जो आर्यत्व और सुजनता का आचरण

करने वाला है, वह आर्य है और जो अनार्यत्व या दुर्जनता का आचरण करने वाला है, वह अनार्य है। सारे संसार को आर्य बनाने या संसार का आर्यीकरण करने का अभिप्राय यही है कि सारे संसार को भला बनाना है।

धर्म की रक्षा और अधर्म का विनाश—इनमें से प्रथम कार्य रचनात्मक लगता है और दूसरा विध्वंसात्मक। बहुत बार ये परस्पर विरोधी भी प्रतीत होते हैं। परन्तु मूल वस्तु है—धर्म की रक्षा या साधुओं का परित्राण, या आर्यत्व का विस्तार। अधर्म का लोप, दुष्कृतों का विनाश या अनार्यत्व का ह्रास उसी बात का आवश्यक अंग हैं। धर्म की रक्षा एक सतत प्रवहमान प्रक्रिया है—उसमें अधर्म का नाश अन्तर्भूत तथ्य है, जिस तरह प्रकाश के विस्तार में अन्धकार का नाश अन्तर्भूत तथ्य है। अन्धकार के नाश के साधन जुटाना भी प्रकाश के विस्तार में ही सहायक है—वैसे ही अधर्म के नाश अनार्यत्व के ह्रास का उपाय भी धर्म की रक्षा या 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' में आवश्यक ही है। क्या कोई किसान अपने खेत में तब तक अच्छी खेती की आशा कर सकता है जब तक उसमें से पहले अनावश्यक झाड़-झंखाड़ या खर-पतयार साफ न कर ले? दुष्कृतों का विनाश भी झाड़-झंखाड़ की सफाई के समान है। वह साधुओं के परित्राण के रचनात्मक कार्य का ही अंग है।

अपने आचरण से इस उपरोक्त कार्य में जो जितना अधिक सहायक होता है, उसका जन्म उतना ही अधिक सफल है। जिनको हम महापुरुष कहते हैं, उनकी महत्ता इसी बात में हैं कि उन्होंने सामान्य पुरुषों से बढ़कर उक्त कार्य किया है, इसीलिए सामान्य पुरुषों की अपेक्षा उनकी उत्कृष्टता बनाने के लिए उन्हें उत्तम-पुरुष या पुरुषोत्तम कहा जाता है राम और कृष्ण दोनों ने ही साधुओं के परित्राण और दुष्कृतों के विनाश, या धर्म की रक्षा और अधर्म के क्षय, या आर्यत्व के विस्तार और अनार्यत्व के संकोच के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया। उन महापुरुषों का यही अवतार-कार्य था, उनके जीवन की यही महनीय महिमा थी।

भारतीय संस्कृति में जिन महापुरुषों को 'अवतार' की संज्ञा दी गई है, उन सबके साथ यही स्थिति है। आलंकारिक भाषा में कहा जाता है कि भू-भार का हरण करने के लिए उन्होंने अवतार लिया था। यह भू-भार का हरण क्या है? क्या इसका तात्पर्य दुष्टों, दानवों, राक्षसों का संहार नहीं है? इनके संहार के बिना पृथ्वी का बोझ हल्का कैसे हो सकता है?

इस समस्त पृष्ठभूमि के साथ सोचें तो वीर बन्दा वैरागी का कर्तव्य भी अवतार-परम्परा की ही कोटि में आता है। परन्तु यह कितने बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस धर्म-रक्षक वीर-शिरोमणि को अवतार कोटि में तो क्या, भारतीय इतिहास केदेदीप्यमान रत्नों में से भी पंक्ति-बाह्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है।

उस जाति की अकृतज्ञता का भी क्या ठिकाना है जो जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने अस्तित्व को तिल-तिल करके मिटा डालने वाले नर-पुंगवों को भी अपने हृदय के सिंहासन पर उचित स्थान नहीं देती ! अन्य अनेक बलिदानी वीरों की स्मृति में तरह-तरह के स्मारक बनाए जाते हैं, किन्तु इस पुरुष-सिंह की स्मृति को जाति ने अपनी सहज विस्मरण प्रवृत्ति का शिकार बना दिया है। गुरु तेग बहादुर का बलिदान जिस स्थान पर हुआ था, उस स्थान पर उस धर्म रक्षक महापुरुष की स्मृति में स्वर्णशिखर-मण्डित सीसगंज गुरुद्वारा बना है। जिस कोठरी में गुरु तेग बहादुर बन्दी बनाकर रखे गए थे, फव्वारे के निकट दिल्ली कोतवाली के उस स्थान को भी गुरुजी की स्मृति की सुरक्षा के लिए सिक्खों को सौंप देने का उचित कार्य किया गया है। दिल्ली प्रशासन ने गुरु तेगबहादुर के साथी भाई मतिदास के अमर बलिदात की स्मृति को जीवित रखने के लिए फव्वारे वाले स्थान का नाम भाई मतिदास चौक रख दिया हैं, न होने से कुछ तो अच्छा ही है। घण्टाघर के पास स्वामी श्रद्धानन्द की मूर्ति भी भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणादायक रहेगी पर जिस चांदनी चौक में उक्त घटनाएं घटीं, उसी चांदनी चौक में वीर बन्दा वैरागी का भी लोमहर्षक बलिदान हुआ था, यह किसी को भी याद नहीं हैं ?

वीर बन्दा वैरागी के बलिदान का वर्णन पढ़कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

१९ जून, १८१६ ई० । बन्दा को वधस्थल पर लाया गया। वधस्थल के चारों ओर भालों की कतार लगाई और उन भालों पर बन्दा के साथियों के कटे हुए सिर टांग दिए गए। बन्दा के मासूम बच्चे को उसकी गोद में डाला गया और बन्दा के हाथ में एक लम्बा छुरा देकर इससे कहा गया कि इस बच्चे को अपने हाथ से कत्ल करो। जब बन्दा इसके लिए तैयार नहीं हुआ तो पास ही खड़े जल्लाद ने छुरी से बन्दा के बच्चे की बोटियां काटीं और वे बन्दा के मुंह में ठूंस दीं। बन्दा इस पर भी विचलित नहीं हुआ।

पर मुहम्मद अमीन खां नामक एक मुसलमान अफसर का हृदय विचलित हो गया। उसने जाकर बन्दा से कहा—"बन्दा, तुम तो साधु हो और धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति हो, फिर तुमने मुस्लिम सेना पर इतना अत्याचार कैसे किया ? न तुम मुस्लिम सेना पर अत्याचार करते, न तुम पर यह विपत्ति आती। परन्तु अब भी समय है, तुम मुस्लमान होना स्वीकार कर लो और बादशाह से अपने किये की माफी मांग लो, तो सम्भव हैं कि तुम्हें माफ कर दिया जाए।" तब बन्दा ने बड़े धैर्य से जवाब दिया—"जब कुछ लोग दुष्टता और अनीति की सीमा पार कर जाते हैं, तब उन्हें दण्ड देने के लिए ईश्वर किसी विशिष्ट व्यक्ति को भेजता है। मुझे प्रसन्नता है कि ईश्वर का वह आदेश मेरे जैसे ईश्वर के इस मामूली बन्दे के द्वारा

पूरा हुआ है, इसलिए मैं माफी किस बात की मांगू। रही इस्लाम अंगीकार करने की बात। जिस हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए मेरी तलवार ने इतनी बार रक्त-स्नान किया है उसी हिन्दू धर्म को छोड़ने की न मैं कल्पना कर सकता हूं, न ही किसी के मुख से इस प्रकार की बात सुनने को तैयार हूं। इस शरीर का क्या हैं, यह तो नश्वर है, इसकी विपत्ति की मुझे चिन्ता नहीं है।"

जब बन्दा को अपनी आस्था में इतना अडिग देखा, तब जैसे शरीर की नश्वरता की चिन्ता न करने की बात की पुष्टि के लिए ही उसके शरीर को इस प्रकार कष्ट दिए गए—

पहले उसकी दाईं आंख निकाली गई, फिर बाईं। फिर उसके हाथ और पैर बारी-बारी से काटे गए। फिर आग में गरम करके लाल भभकते चीमटों से उसकी खाल नोची गई। लहू-लुहान शरीर की हड्डियां दीखने लगीं।

तब फिर पूछा गया—"बन्दा, अब भी इस्लाम को अंगीकार करने का और माफी का रास्ता खुला है। बोलो, क्या कहते हो ?"

बन्दा तब भी अविचल रहा। उसके चेहरे पर प्रसन्नता थिरक उठी। उसने अजीब मस्ती के साथ मुक्तकण्ठ से नारा लगाया—'अलख निरंजन।'

और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

× ×

बलिदानी महापुरुषों के बलिदानों की तुलना कोई शोभनीय कार्य नहीं है। बलिदान तो बलिदान ही है—उसमें क्या छोटा और क्या बड़ा ? पर बन्दा वैरागी का बलिदान गुरु तेगवहादुर के बलिदान से किस प्रकार कम है, यह समझ में नहीं आता। फिर एक के लिए इतना विशाल गुरुद्वारा और दूसरे के लिए एक ईंट भी नहीं ! इस अविवेक की भी कोई सीमा है !

इस अविवेक के ऐतिहासिक कारणों पर जब विचार करते हैं तब कभी कभी दुरभिसन्धि की गन्ध सी आने लगती हैं।

सिकनाम से सम्बोधित हिन्दुओं के वर्ग में शौर्य, उत्साह, तथा त्याग और बलिदान की भावना जितने चरम उत्कर्ष पर है, उतनी कदाचित् हिन्दुओं के अन्य किसी वर्ग में नहीं है। पर सिक्खों के एक वर्ग में अपनेआपको हिन्दुओं से अलग समझने की भी प्रवृत्ति भी अर्से से रही है। गुरूनानक की बाणी और उनके उपदेशों के पढ़ने से ऐसा नहीं लगता कि वे हिन्दुओं से अलग किसी नए सम्प्रदाय का संगठन करना चाहते हो। नानक देवी-देवताओं के जाल में उलझ कर एक ईश्वर को भुला देना, संस्कृत केशास्त्रीय शब्द-जाल के चक्कर में पड़े पुरोहितों और ज्योतिषियों के हाथ में अपनी भाग्य सौंप देना ब्राह्मणत्व अभिमान में अन्य वर्णों से भेद-भाव का व्यव-

ह्रार करना आदि ऐसी परम्पराएं हिन्दू धर्म में प्रचलित होगई थी जिनके विरुद्ध विद्रोह आवश्यक था। जिस प्रकार कभी महात्मा बुद्ध और महाबीर स्वामी ने हिन्दुओं में वाममार्गियों द्वारा प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध और जन्म मरण आदि व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया था, उसी प्रकार गुरुनानक ने भी अपने समय में प्रचलित हिन्दू समाज की कुरीतियो के विरुद्ध विद्रोह किया था और लोक भाषा में वेद और ईश्वर के प्रति निष्ठा का प्रचार किया था। 'नाम जपन अते वंड के छकन' नाम जपना और बांट के खाना उनके उपदेशों का सार था। इसमें स्पष्टतः ईश्वर-भक्ति और सच्ची समानता को धार्मिक जीवन का मुख्य आधार माना गया है। गुरुनानक ने वेद की बड़ी महिमा गाई है।

कुछ नमूने देखिए—

असंख्य ग्रन्थ मुखवेद पाठ ओंकार वेद निर्मये।

—रामकली माला

स्वस्ति आप वाणी ब्रह्माऊ
सत्त सुहान सदा मनचाऊ।
ऐरन मत वेद हथियार
भाव खलग आनि तप्ताऊ।
गढ़िये शब्द सच्ची टकसाल
जिनको नानक नजर निहाल।

जपजी

गुरुनानक की वाणी में से उपरोक्त ये कुछ उद्धरण ही उनकी वेद-विषयक मान्यता के प्रमाण के रूप में पर्याप्त हैं।

दशम गुरु गोविन्दसिंह ने भक्ति-प्रधान सिक्ख-समुदाय को वीरता का जामा पहनाया। मुगल बादशाहों के अत्याचारों का मुकाबला करने के लिए यह तात्कालिक आवश्यकता थी। 'पंज प्यारों' से जिस खालसा दल (पवित्र दल) की शुरुआत उन्होंने की थी उसका भी मुख्य उद्देश्य हिन्दुत्व की रक्षा ही था। दशम पादशाह गुरु गोविन्दसिंह के पिता-श्री तेगबहादुर का बलिदान भी तो इसी निमित्त हुआ था। जब औरंगजेब ने बल पूर्वक जनता को इस्लाम कबूल करने को बाध्य किया तब कश्मीर के कुछ पण्डितों ने आनन्दपुर आकर गुरु तेगबहादुर से इस दारुण व्यथा की कथा कही। गुरुजी ने कहा कि किसी महापुरुष के बलिदान के बिना हिन्दुओं की रक्षा संभव नहीं है।' उस वक्त उनका बालक पुत्र गोविन्दसिंह वहीं खड़ा था। उसने छूटते ही कहा—आपसे बढ़कर और महापुरुष कौन होगा ?' बाप को बेटे की बात लग गई और वे अपने बलिदान के लिए तैयार होकर दिल्ली चल दिए। औरंगजेब से गुरुजी ने कहा—"यदि तुम मुझे मुसलमान बना लो तो अन्य लोग भी मुसलमान

बन जायेंगे ।" औरंगजेब जब किसी भी प्रकार गुरुजी को मुसलमान बनाने में समर्थ नहीं हुआ तब ११ नवम्बर १६७५ ई० को उनका सिर काट दिया गया और उनके साथी मतिदास को आरे से चीर कर दो टुकड़े कर दिये गये ।

इसी विषम परिस्थिति में गोविन्दसिंह दसवें गुरु की गद्‌दी पर आसीन हुए। उन्हें अपने पिता के बलिदान का प्रतिशोध तो लेना ही था, वे यह भी नही भूले थे कि उनके पिता का बलिदान किसी महत्तर उद्‌देश्य के लिए हुआ था और वह उद्‌देश्य था—हिन्दुत्व की रक्षा ।

इस हिन्दुत्व की रक्षा के लिए उनका मार्ग वही श्रीकृष्ण वाला मार्ग था-साधुओं का परित्राण और दुष्टों का विनाश । इसलिए उनकी दृष्टि में जीवन का सबसे बड़ा आदर्श धर्म-युद्ध करते हुए उसमें अपने प्राणों का उत्सर्ग करना बन गया। उन्होंने 'कृष्णावतार' नामक अपनी रचना में भगवान् से यही वर मांगा है—

जूझ मरौं रन में तजि भय
तुम ते प्रभु श्याम इहै वर पावैं ।

गुरु गोविन्द सिंह ने श्रीमद्‌भागवत् के दशम स्कन्ध की कथा भी ब्रजभाषा में लिखी है। वे सबल योद्धा, गम्भीर विचारक, महान् साहित्यकार और अद्‌भुत संगठन-कर्ता थे । उनके मन में साम्प्रदायिकता की भावना नहीं थी—न ही हिन्दुओं से पृथक् किसी सम्प्रदाय की स्थापना की बात उन्होंने कभी सोची होगी । उनका व्यक्तित्व था ही ऐसा विलक्षण कि जो भी उनके सम्पर्क में आता, वह उन्हीं का होकर रह जाता और हिन्दुत्व की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाने में अपने जीवन की सार्थकता मानता ।

गुरु गोविन्दसिंह का जीवन संघर्षों में बीता। धर्म-युद्ध में उन्होंने अपने चारों पुत्रों तक का बलिदान कर दिया—अजीतसिंह और जुझारसिंह युद्ध में काम आए और जोरावरसिंह तथा फतहसिंह इस्लाम स्वीकार न करने के कारण दीवारों में चिनवा दिए गए ।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि इतनी कुर्बानी देने पर भी जीवन के उत्तरार्ध में उन्हें अपना स्वप्न असिद्ध होता हुआ दीख रहा था । इसीलिए वे पंजाब से दक्षिण भारत की ओर चले । उत्तर भारत में मुगलों से उनका जो संघर्ष छिड़ा था, उसे बीच में ही अधूरा छोड़कर और निराश होकर वे दक्षिण दिशा की ओर चल दिए हों यह मानने को मन नहीं चाहता । गुरु गोन्दिसिंह जैसे अप्रतिम व्यक्तित्व के साथ निराशा की या पलायन की कल्पना भी नहीं की जा सकती । वे निश्चय ही राजस्थान के राजपूत राजाओं से और महाराष्ट्र के वीर मराठों से अपने महान् मिशन की पूर्ति में सहायता पाने के लिए ही गए होंगे। मराठों की सफलता का क्या रहस्य है

और छत्रपति शिवाजी महाराज ने कैसे मुगलों को परास्त कर हिन्दू पादशाही की स्थापना में सफलता प्राप्त की—इसके निकट से अध्ययन की लालसा भी उनके मन में रही होगी। पर अपनी विफलता की कचोट उनके मन में नहीं रही होगी—यह कौन कह सकता है? जब उन्होंने महाराष्ट्र से गुज़रते हुए अपने और शिवाजी के स्वप्नों की तथा उनकी सिद्धि-असिद्धि की तुलना की होगी—तब निस्संदेह उनके हृदय की यह कचोट और बढ़ गई होगी।

इसी मानसिक स्थिति में वे पहुंचे नान्देड़—जो गोदावरी के तट पर स्थित प्रसिद्ध तीर्थ था। वहां उनकी भेंट हुई माधोदास बैरागी से—जो अपनी साधुता और सिद्धियों के लिए उस प्रदेश में विख्यात था। गुरु जी को प्रथम दृष्टि में ही वीरों को शोभा देने वाली उसकी विशाल देह-यष्टि देखकर शायद आभास हुआ हो कि यह है मेरे असिद्ध स्वप्न को सत्य सिद्ध करने वाली दिव्य मूर्ति। पर कहां संसार से विरक्त और निर्वासित मार्ग का उपासक साधु और कहां सरासर प्रवृत्ति मार्ग का द्योतक, लबालब हिंसा से भरा युद्ध क्षेत्र! गुरु जी की कसौटी इसी बात में थी कि वे उस वैरागी माधवदास को मातृभूमि का इतना अनुरागी बना दें कि वह किसी तरह खड्ग हाथ में लेकर धर्म-युद्ध के लिए तैयार हो जाए।

जैसा हम पहले कह आए हैं—भारतीय संस्कृति का और वैदिक धर्म का मर्म जिसने समझा है, वह साधुओं के परित्राण और दुष्कृतों के विनाश को एक ही प्रक्रिया का अंग मानता है—वह हिंसा-अहिंसा के व्यर्थ वितण्डावाद में नहीं फंसता वही यहां भी हुआ। जब कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव और पाण्डवों की सेना के मध्य अर्जुन का रथ पहुंचा, तब अर्जुन ने भी तो माधवदास वैरागी की तरह आचरण किया था। उस समय योगेश्वर कृष्ण ने उसे गीता का उपदेश दिया और अन्त में अर्जुन ने कहा—'करिष्ये वचनं तव'—आपने जैसा कहा है, मैं वैसा ही करूंगा। ठीक उसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने कृष्ण की भूमिका निभाई। जब देश लुट रहा हो, आततायी छल-बल से देश के धर्म और संस्कृति का विध्वंस करने पर तुला हो, तब भी क्या एकान्त में योग और तपस्या में लीन रहकर व्यक्तिगत मोक्ष की साधना करना परले दर्जे का स्वार्थ नहीं है? यदि सभी राष्ट्रवासी इस मार्ग पर चलने का निश्चय कर लें तो राष्ट्र की रक्षा कौन करेगा? प्रत्येक व्यक्ति यदि अपनी ही उन्नति में लगे रहना अपने जीवन का ध्येय मानने लगे तो समाज की उन्नति कौन करेगा? आखिर प्रत्येक व्यक्ति का अपने समाज के प्रति भी कुछ न कुछ दायित्व है। उस दायित्व को यदि समर्थ और तेजस्वी व्यक्ति पूरा नहीं करेंगे तो देश के अधः पतन को रोकना कठिन हो जाएगा।

जैसे अर्जुन ने गीता सुनने के पश्चात् श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहा

था—'करिष्ये वचनं तव' वैसे ही माधवदास वैरागी ने भी कहा—'गुरु जी, मैं आपका बन्दा हूं, जैसा आपका आदेश होगा, वैसा ही करूंगा।'

तभी से उसका नाम बन्दा वैरागी पड़ गया। गुरु जी ने अपना स्वप्न बन्दा वैरागी के हृदय में उंडेल दिया। जैसे जामवन्त के उकसाने से हनुमान् को अपनी शक्ति का स्मरण हो आया और वह समुद्र लांघकर लंका जाने को तैयार हो गया, वैसे ही गुरु जी की प्रेरणा से बन्दा वैरागी भी हिन्दुत्व की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गया। जब सरहिन्द के नवाब वज़ीरखां द्वारा भेजे हुए दो पठानों ने गुरु जी की नान्देड़ में ही हत्या कर दी तब तो गुरु जी के स्वप्न को पूरा करने का दारोमदार एकमात्र बन्दा वैरागी पर ही पड़ गया।

शस्त्र-सनद्ध होकर बन्दा वैरागी ने सबसे पहले गुरु जी के कातिल और गुरु जी के पुत्रों को दीवार में चुनवा देने वाले नवाब वज़ीरखां से ही बदला लिया। फिर समाना के निवासी जलालुद्दीन से बदला लिया जिसने गुरु तेग बहादुर को कत्ल किया था। इसके बाद उसकी विजय वाहिनी ने एक के बाद एक मुगल साम्राज्य के पंजाब में विद्यमान स्तम्भों को धराशाही करना प्रारम्भ किया। बन्दा वैरागी की इन द्रुत विजयों से मुगल-साम्राज्य की चूलें हिलने लगीं और आम जनता में यह विश्वास पैदा होने लगा कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए किसी ईश्वरीय शक्ति ने अवतार लिया है। धड़ाधड़ उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी।

बन्दा भी प्राणपण से हिन्दू धर्म की रक्षा में लग गया। जहां कहीं उसे पता लगता कि हिन्दुओं पर अत्याचार हो रहा है, वहीं वह अपने सैनिकों को लेकर पहुंच जाता और उस अत्याचारी को परास्त करके दम लेता। आततायियों पर दया करना उसने नहीं सीखा था। जब अत्याचारियों को उन्हीं सिक्कों में जवाब मिलने लगा जिन सिक्कों की बदौलत वे यहां राज्य कर रहे थे, तब वे ठण्डे पड़ गए।

बन्दा ने जनता के मन में एक क्रान्ति पैदा कर दी। अब तक जो जाति पद-दलित रहने की अभ्यस्त हो गई थी, वह फिर अपने पौरुष से देदीप्यमान हो उठी। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० गण्डासिंह और तेजासिंह ने भी मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है—

"जनता के मन में इस समय जो क्रान्ति पैदा हुई उसकी ओर इतिहासकार अक्सर ध्यान नहीं दे पाते। आम जनता में यह भावना पैदा हो गई कि हमें अत्याचार का मुकाबिला करना है और महान् राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए हमें जीना और मरना है।······हिन्दू राष्ट्र (नेशनल स्टेट) का जो स्वप्न चिरकाल से ओझल हो

गया था वह फिर जीवन्त प्रेरणा बन गया।"

जिस भावना से प्रेरित होकर छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण भारत के काफी हिस्से को मुगलों से छीनकर भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता का सूत्रपात किया था और हिन्दू राष्ट्र की स्थापना की थी, उसी भावना को बन्दा ने उत्तर भारत में चरितार्थ करने का प्रयत्न किया। देखते-देखते बन्दा ने कुछ ही वर्षों में मध्य-पंजाब और पूर्वी पंजाब को मुगल-शासन से मुक्त कर दिया और वहां हिन्दुत्व का झण्डा लहरा दिया।

इससे मुगलों की केन्द्रीय सत्ता थर्रा उठी। औरंगजेब के बाद मुगल बादशाह बहादुरशाह ने जब सारे पंजाब को अपने हाथ से निकलते देखा तो दक्षिण विजय के स्वप्न को अधूरा छोड़ कर वह उत्तर भारत लौट आया और उसने बहुत बड़ी सेना तैयार कर बन्दा से लड़ने के लिए भेजी। इधर जब बन्दा अपनी लोकप्रियता की चरम सीमा पर था और बहुत से लोग उसको अपना गुरु मानकर उसके प्रति पूजा-भाव से ओत प्रोत थे, तब सिक्खों के उस वर्ग को, जो शुरू से ही पृथक्तावादी भावना को प्रश्रय देता रहा है और अपने आपको हिन्दुओं से अलग समझने में ही अपनी स्वार्थपूर्ति देखता रहा है, बन्दा की लोकप्रियता सहन नहीं हुई। इस वर्ग ने बन्दा का विरोध करना प्रारम्भ किया।

बादशाह बहादुरशाह लोहगढ़ को घेरने के लिए बहुत बड़ी सेना लेकर आ रहा था कि रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। मुगल सेना लौट गई। तब बहादुशाह के स्थान पर दिल्ली के सिंहासन पर बैठे बादशाह फर्रुखसियर ने बन्दा से लड़ाइ मे विजय पाना कठिन समझकर एक नया कूटनीतिक खेल खेला। हिन्दुओं और सिक्खों की तात्कालिक फूट का उसने मैकालिफ अंग्रेज की तरह फायदा उठाया और अपने एक हिन्दू वज़ीर को गुरु गोविन्दसिंह की माता सुन्दरी देवी के पास भेज कर कहलाया कि हमारे पूर्वज तो आपके पूर्वजों के सदा सहयोगी और सेवक रहे है—हमे आपसे कोई दुश्मनी नहीं है। हम अब भी आपकी सब तरह की खिदमत मे हाज़िर हैं। हम सिक्खों को सब अधिकार देगे, पर आप किसी तरह बन्दा को समझा लें।

फर्रुखसियर का दांव काम कर गया। माता सुन्दरी देवी इस चाल में आ गई। उन्होंने बन्दा को एक पत्र लिख दिया—"युद्ध तुरन्त बन्द कर दो। बादशाह हमें जागीर देने को तैयार है। तुम गुरु के सच्चे बन्दे हो तो तुम्हें इस आदेश का पालन करना चाहिए।"

जब बन्दा के पास यह पत्र पहुंचा तो उसने उत्तर दिया—मैं वैरागी साधु हूं। मैं गुरु का आदर करता हूं, पर उनका शिष्य नहीं हूं। मैंने गुरु के पिता और

पुत्रों के बलिदान का बदला लेकर अपनी गुरुभक्ति का ऋण चुका दिया है। मैं जिस महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लड़ रहा हूं, वह अभी पूरा नहीं हुआ है। मुझे न किसी की जागीर चाहिए, न दया। मैं जब तक अपना उद्देश्य प्राप्त नहीं कर लूंगा, तब तक युद्ध से विरत नहीं होऊंगा।"

इस उत्तर को अपना अपमान समझकर माता सुन्दरी देवी ने सिक्ख सरदारों व पंथ को आदेश भेज दिया कि बन्दा गुरु का सिक्ख नहीं है, इसलिए उसे सहयोग मत दो। इस आदेश के अनुसार सिक्खों ने बन्दा को सहयोग देना छोड़ दिया। इतना ही नहीं, बल्कि उसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। फर्रुखसियर ने अमृतसर के दरबार साहिब को पांच हज़ार रु० की भेंट भिजवाई। सन् १७१६ की वैशाखी के मेले के अवसर पर सिक्खों ने बन्दा का अपमान भी किया।

इससे बन्दा मर्माहत हो उठा। उसने सिक्खों को हिन्दुओं का ही अंग समझ कर गुरु गोविन्द सिंह के जिस असिद्ध स्वप्न को सिद्ध करके हिन्दू राज्य की स्थापना का संकल्प किया था, अब उसका क्या होगा? उपस्थित हो गया। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। अब उसने पूरे हिन्दू समाज को संगठित करने का प्रयत्न किया और स्वल्पकाल में ही हिन्दुओं की अच्छी खासी सेना तैयार कर ली। जो सिक्ख बन्दा से अलग हुए थे उन्होंने अपने आपको तत्खालसा (तत्व खालिसा=शुद्धतम) कहना प्रारम्भ किया। दिल्ली के बादशाह ने इन तत्खालसों से सन्धि कर ली। जब बन्दा ने लाहौर पर चढ़ाई की तो उसने मुसलमान सूबेदार की सेना के साथ तत्खालसों को भी अपने विरुद्ध मोर्चों पर डटे हुए देखा। ऐसे समय युद्ध करना उचित न समझ-कर बन्दा वापिस गुरदासपुर लौट गया।

बन्दा फिर भी चुप नहीं बैठा। उसने स्यालकोट, वजीराबाद और गुजरात के कुछ स्थानों पर आक्रमण करके अपने अधीन कर लिया। सन् १७१६ में फर्रुख-सियर ने फिर विशाल सेना तैयार कर अचानक चारों ओर से गुरदासपुर को घेर लिया। यातायात के सब मार्ग अवरुद्ध कर दिए जाने के कारण रसद पहुंचना बन्द हो गया। अन्त में किले के फाटक खोल देने पड़े और अन्न के अभाव में अस्थि-पंजर बने बन्दा और उसके सैनिक गिरफ्तार करके दिल्ली लाए गए।

सिक्ख इतिहासकारों ने बन्दा वैरागी को बन्दासिंह बहादुर कहकर उसे सिक्ख सिद्ध करने का प्रयत्न किया है और प्रकारान्तर से उसपर सिक्खों के साथ गद्दारी करने का लाञ्छन लगाया है। यही कारण है कि आज तक उनके समुदाय में इस महापुरुष को वह सम्मान नहीं मिला, जिसका वह अधिकारी था। पर घटनाएं स्वयं बोलती हैं। किसने किसके साथ गद्दारी की यह स्पष्ट है। इतिहास यही कहेगा कि

हृदय की संकीर्णता ने इतिहास को नया मोड़ दिया और हिन्दूराष्ट्र की स्थापना का गुरु गोविन्दसिंह का स्वप्न बन्दा के हाथों पूरा होता होता रह गया। क्या इस देश में से यह संकीर्णता कभी मिट नहीं पाएगी और कभी हिन्दुत्व के नाम पर सारा राष्ट्र एक नहीं हो पाएगा ? इस प्रश्न का उत्तर भी इतिहास ही देगा।

दैनिक वीर अर्जुन के सम्पादक श्री के० नरेन्द्र ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि

Secular का अर्थ हमारे संस्कारों के खिलाफ Revolt है ।

Secularism के नाम पर हमारे चरित्रों की विशेषतायें नष्ट कर दी गई हैं। आज भारत में धर्म-संकट है । जो अपनी मान्यताओं की रक्षा नहीं कर सकता वह मर जाता है ।

आज हम बहाने बाजी में मसरूफ हो चुके हैं। यह याद करना आवश्यक है कि लक्ष्मणदास अपनी संज्ञा समाप्त करके बंदा बन जाता है। स्वधर्म और स्वजाति का अपमान वह नहीं सह सका। दुनिया में नैपोलियन, रोमिल, सभी का अंत ऐसा ही हुआ है । कोई समय था जब हिंदुओं की धर्म निरपेक्षता की तारीफ होती थी परंतु अब इसी ने हमको डुबो दिया । आज हिंदू होना पाप है । अतः सोचना होगा कि क्या आपकी उदारता और धर्म निरपेक्षता का समाप्त करने का वक्त नहीं आया । स्वार्थ की कोई सीमा होती है । आज कांग्रेस का झगड़ा स्वार्थ का है। अपनी राजगद्दी के लिए ही यह हो रहा है । यदि हम स्वार्थ से उपर नहीं आए तो तो हमें विरोधी शक्तियां नष्ट कर देंगी ।

शक्ति के साथ विरोध करना ही कामयाबी है। बंदा वैरागी की आत्मा ने आवाज दी कि हिंदू धर्म पर जुल्म हो रहा है और वह आत्मा की आवाज पर चल पड़ा । आज हम अपने ही देश में बेवकूफ बनाये जा रहे हैं हमारे ही लोग हमारी भारतीय मान्यताओं का विरोध कन रहे हैं।

संसद् सदस्य श्री नारायण स्वरूप शर्मा ने कहा कि—

भारत में विद्या-धन की कमी नहीं थी । बंदा के समय में भी और आज भी हमारे ऊपर आक्रमण हो रहे हैं । यरुशलम की मस्जिद के जलने पर भारत में जलूस निकालना उदारता हो सकता है परन्तु भारतवर्ष में जगन्नाथ मंदिर पर जब आक्रमण किया गयातब इंदिरा जी से लेकर दिनेश जी तक ने कुछ भी नहीं कहा । हिन्दू-धर्म की भावना पर चोट सहना भीरुता और कायरता है। बदा वैरागी की याद करना इस संदर्भ में आवश्यक हैं । यदि देश की रक्षा करनी है तो दूर-दूर के देशों में अपनी सीमाएं बनाना चाहिए । किले में लड़ना और शहीद होने की प्रवृत्ति की प्रशंसा की जा सकती है परन्तु राजनीतिक अपमान की यही भूमिका है। भारत की तटस्थता और पंचशील की नीति घातक है । हमें अपनी भीरुता छोड़नी पड़ेगी ।

अन्त में भारतीय साहित्यकार संघ के महामंत्री श्री मुरारी राजीव ने सबको धन्यवाद दिया और संयोजक सुन्दरदास जी की आगामी वर्ष की पुस्तक प्रकाशन-योजना का समर्थन किया ।

भारतीय साहित्यकार संघ की वीर बन्दा वैरागी समिति के अध्यक्ष श्री वासुदेव महाशय



आप एक उत्साही सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं। कार्य के प्रति समर्पण की भावना आपका मूल-मन्त्र है। इसी कारण आप अपने सहयोगियों में अति प्रिय हैं। देश प्रेम तथा धर्म प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी है।

श्री बहादुरचन्द ढींगरा



आप एक उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। हर प्रकार का सहयोग देने में आप सदा तत्पर रहते हैं। आप जनसंघ समिति के सदस्य भी हैं।

वीर बन्दा वैरागी समिति के सलाहकार

सर्वश्री डॉ॰ वशिष्ठ कुमार पुष्करण, के॰ नरेन्द्र, वैद्य गुरुदत्त, मोहन लाल, डॉ लोकेश ।

✲

— सहयोगी —

सर्वश्री नरसिंह दास भाटिया, हरभगवान अरोड़ा, सत्यपाल, बहादुर चन्द,

बालकृष्ण थापर, देवराज चड्ढा, धनराज मोंगा, जयन्त कुमार पारीख,

दयानन्द आहूजा, राजपाल शास्त्री, कृष्णलाल आर्य राजौरी गार्डन,

हरदयाल तिलक नगर, मोहन लाल नन्दा पटेल नगर,

देवराज ग्रोवर, लक्ष्मी नारायण, रमेश सहगल,

राम स्वरूप डंग, वजीर चन्द कोहली,

शिवनाथराय तुली, श्याम सुन्दर,

वेद प्रकाश, कृष्ण लाल,

जगन्नाथ खुराना, रामकृष्ण खट्टर ।

✲

वीर बन्दा वैरागी—सिद्धान्त तथा नीति

सुन्दर दास

आज का युग भौतिक विज्ञान का युग है। इस युग में किसी विषय, जाति, समाज, राष्ट्र या किसी राजनीतिक या आर्थिक विषय या किसी देश के महान् पुरुष आदि के बारे में वैज्ञानिक या आर्थिक दृष्टिकोण से सोचा जाता है। विशेष रूप से यह परम्परा पश्चिमी देशों के विचारकों द्वारा भारत मे आई है। यहां पहले के आधार पर राष्ट्र और सामाजिक जीवन पर विचार किया जाता था। सामाजिक आन्दोलन या कोई आर्थिक आन्दोलन हो इन सब को चलाने वाला नेता अपनी योग्यता द्वारा इनको चलाता है उसका परिणाम राज्य, समाज तथा जाति के नागरिकों पर पड़ता है। इसी कारण से किसी विषय को छूने से पहले उस विषय के सम्बन्ध में प्राकृतिक, सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन आवश्यक है। इन्हीं का प्रभाव पड़ता है।

युद्ध और विचार

संसार में जितने युद्ध हुए उन सब में बल का प्रयोग हुआ। जितने भी युद्ध हुए वे धन तथा प्रभुत्व को प्राप्त करने के लिए हुए। जिससे लाखों का विनाश भी हुआ और धन सम्पत्ति भी नष्ट हुई।

मनुष्य स्वयं कोई वस्तु नहीं है किन्तु वह भाव के अधीन है। वह भाव अधीन कार्य करता है और उसमें समाप्त हो जाता है। जैसे मिश्र आदि देश में यहूदियों को समाप्त करने की भावना विद्यमान है। इसी प्रकार भारत के विपरीत पाकिस्तान, पश्चिमी देशों, साम्यवादी देशों, राजनैतिक में ये देश आर्थिक प्रभाव स्थापित करना चाहते हैं। जिसका परिणाम हमारे सामने है। वे अपनी भावना द्वारा हमारी भावना को समाप्त करने के लिए जो भी उपाय उपलब्ध होता है उसका प्रयोग करते हैं। इसी कारण से हम स्वतन्त्र होते हुए भी विचारक दृष्टिकोण से दुर्बल हैं।

विचारक-दृष्टि से कमजोर होने के कारण आज भारत दूसरों की भावना का शिकार बना हुआ। इसी आधार पर भारत युद्ध का केन्द्र बनता जा रहा है।

आज से पहले संसार के शीत युद्ध का केन्द्र अन्य देश थे। किन्तु आज हम आत्म बलहीन होने के कारण शीत युद्ध को टालने में असमर्थ हैं। हमें महानुभावों की आत्माओं से आत्म दृष्टि लेनी होगी। इसी प्रकार आज हमारे विचारों पर नास्तिकता का प्रभाव डालने का प्रयत्न चल रहा है। इस से बचने के लिए विचारक शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न होना चाहिए तथा जिस विचार से आज तक हम जीवित रहे पुन: उन विचारों को अपना कर आत्म बल की रक्षा करनी चाहिए।

इतिहास का महत्त्व

जहां इतिहास जाति का दर्पण होता है वहां वह मार्ग दर्शन भी कराता है। यहां पर कई सदियों तक विदेशी हमले होते रहे हैं और उनकी सरकारें रहीं। जिन जातियों का प्रभुत्व रहा उन्होंने अपने को ऊंचा समझा और हमको नीचा। अपने को उच्च कोटि का समझ कर हमारे साथ बुरा व्यवहार किया। इससे हीन भावना उत्पन्न हुई इसकी समाप्ति के लिए कई महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ। तुर्की जाति का यहां पर आक्रमण तथा उसके प्रभुत्व को समाप्त करने में उत्तर भारत के अनेक महापुरुषों में गुरु नानक देव जी भी थे। उन्होंने भ्रमण करके विदेशियों तक अपने विचारों का प्रभाव बढ़ाया और राष्ट्र के नागरिकों का इस प्रकार आत्म बल बढ़ाया जिसके कारण श्री गुरु नानक जी की बाबर की जेल, बलिकन्धारी का पत्थर गिराना इत्यादि उदाहरण स्पष्ट हैं। अरब आदि देशों में भी हिन्दू शब्द का मान बढ़ाया। उनकी यह पंक्तियां आज भी प्रेरणा-स्रोत बनी हुई हैं।

हिन्दू कहां ता मारया, मुसलमान भी न,
पांच तत्त्व का पुतला नानक मेरा नाम।

इन पंक्तियों में भावना का ओज है। यह स्पष्ट है कि गुरु नानक जी ने ईश्वर भक्ति और मानव प्रेम द्वारा जो शक्ति प्राप्त की वही शक्ति दसों गुरुओं की सैनिक शक्ति से दो सौ वर्षों बाद प्राप्त हुई। गुरु नानक देव जी ने ईश्वर-भक्ति मानव-प्रेम द्वारा जनता तक अपनी भावना को प्रकट करके उसे क्रियात्मक रूप दे दिया। इस आन्दोलन में दो वर्ष का समय लगा। कितने मूल्यवान् जीवन समाप्त हुए तब जाकर विदेशी मुगल साम्राज्य को भारत से उखाड़ फेंकने का श्री गणेश पंजाब प्रान्त में श्री गोविन्द सिंह द्वारा हुआ। उन्होंने ही आगे चलकर श्री वीर बन्दा

वैरागी को बल दिया ताकि वे अपने देश की रक्षा करें और यह घोषित किया कि वे ही देश के स्वामी हैं और कोई नहीं।

सिक्ख आन्दोलन

गुरु गोविन्द सिंह के समय सिक्ख आन्दोलन विकट परिस्थिति में पड़ गया था। उसकी आगामी सफलता का मार्ग वीर बन्दा वैरागी द्वारा प्राप्त हुआ। उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी और सर्वस्व न्योछावर कर दिया। सांसारिक सुखों को ठुकराकर सच्चा देश भक्त बन सिद्धांत के लिए लड़े। उपरोक्त उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि बन्दा वास्तव में राजनैतिक क्षेत्र में पूर्ण उतरे।

गुरु नानक देव ने अपने समय में तुर्क-शासन का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा किया है।

नीले वस्त्र कपड़े पहिने
तुर्क पठानी अमल गया।

अब गुरु गोविन्द सिंह ने इसे इस प्रकार बताया।

नीले वस्त्र कपड़े फाड़े
तुर्क पठानी अमल गया।

उपरोक्त पंक्ति से यह सिद्ध हुआ कि गुरु गोविन्द सिंह ने आत्म बल का जो संचार किया उसी को आगे बढ़ाकर वीर बन्दा ने उत्तर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित करके, सिक्का आदि चलाकर, यह सिद्ध किया कि तुर्क पठानी शासन समाप्त कर दिया। इसी प्रकार श्री गुरु तेगबहादुर जी ने परोपकार के लिए ब्राह्मणों की रक्षा के लिए दिल्ली में जीवन बलिदान किया था।

उपरोक्त वाक्यों में यह सिद्ध हुआ कि

कीनो बड़ी कलू मैं साका,
तिलक जनेऊ राखा प्रभु ताका।

जो गुरु गोविन्द सिंह ने यह श्लोक गुरु तेग बहादुर के प्रति कहे थे, आगे चलकर वीर बन्दा वैरागी ने दिल्ली आकर बन्द बन्द कटवा कर यह सिद्ध किया कि तिलक जनेऊ की रक्षा की।

गुरु गोविन्द सिंह ने हिन्दू के हृदय में आत्म बल उत्पन्न करने के लिए तलवार की पूजा कराई कि धर्म की रक्षा के लिए शक्ति का प्रयोग करके हिन्दू राष्ट्र की रक्षा की जाए। इसी प्रकार वीरता की व्याख्या करते हुए गुरु जी ने यह वाक्य कहा—

सूरा जो पहचानिए लड़े दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कट मरे कबहै न छाड़े खेत॥

गुरु जी के इन वाक्यों का सौभाग्य वीर बन्दा को प्राप्त हुआ और किसी को नहीं। सच तो यह है कि इन वाक्यों द्वारा बन्दा ने दिल्ली में अपना बन्द बन्द कटवा कर निष्ठा के अर्पित किया।

गुरु गोविन्द सिंह ने उस समय की परिस्थिति का वर्णन करते हुए इस पंक्ति में वर्णन किया है और यह उक्त भाव का पूर्ण समाधान है। उस समय की परिस्थिति पर नियंत्रण पाने का विचार ध्येय है। यहां नीचे की पंक्ति पर ध्यान देना आवश्यक है—

दुष्ट जेते उठावत उत्पाता
सफल मलेवक्ष करी रण घाता
वैरन सबको आज शृंगारी
चुन चुन शत्रु हमारे मारी
देग व तेग जग में बोऊ चले
आप राख मोहे अवर न दले।

वीर बन्दा ने चुन चुन कर शत्रुओं को पहले मारा और उनसे बदला लिया फिर देग तेग के लिए लौहगढ़ राजधानी बना कर यह सिद्ध किया कि बन्दा इस श्लोक का पालन करके वीर अर्जुन की भांति निष्ठावान् सिद्ध हुए।

हमारा देश कई क्रान्तियों से गुजरा है। इन सब क्रान्तियों के अनेक हिन्दू वीर हैं। किन्तु इन वीर पुरुषों में बन्दा हिन्दू जाति के इतिहास में एक अटल ध्रुव नक्षत्र बनकर भारतीय गगन को चमका रहा है।

आरम्भिक लक्षण

वीर बन्दा का जीवन आरम्भ से ही रोमाञ्चकारी ढंग से चला आया है और उसकी जीवन लीला की समाप्ति भी रोंगटे खड़े होने वाली दिखाई देती है। साधारण परिवार के कृषक राजपूत रामदेव, राजोरी ग्राम जम्मू कश्मीर, के घर बन्दा का जन्म हुआ था। कृषक परिवार होने के कारण खेतों में शिकार आदि करते हुए शेरों की तरह घूमना बन्दा के आत्मबल का परिचय देता है।

वैराग्य

२४ वर्ष की आयु में एक दिन हिरणी का शिकार करने पर उसके पेट से निकले बच्चे, जिन्होंने उसी समय दम तोड़ दिया, बन्दा वैरागी को महात्मा बुद्ध की भांति संसार से विरक्त कर दिया। बन्दा कसूर ग्राम के पास नारायण दास योगी से योग की शिक्षा लेकर माधवदास वैरागी बन गए। जगह-जगह भ्रमण करते हुए सारे देश का दर्शन किया। उन्होंने दक्षिण में जाकर नन्देर में गोदावरी के तट पर डेरा लगाया। योग क्रिया सिद्ध कर योगी भर्तृहरि की भांति अपना आसन स्थापित किया। माधव दास दक्षिण में योग साधना द्वारा इतने विख्यात हुए कि दादू सम्प्रदाय के मुख्य सन्त ने गुरु गोविन्द सिंह से मिलते समय माधव दास वैरागी का वर्णन करना आवश्यक समझा। स्वयं गुरु जी दक्षिण में नन्देर में बन्दा से जा मिले और उन दोनो का मिलाप वास्तव में ही 'राम-भरत का मिलाप' था। वीर बन्दा ने उनका आदेश मानकर उत्तर भारत में हो रहे आक्रमणों का विरोध किया और गुरु गोविन्द सिंह ने शत्रु की समाप्ति के लिए वीर बन्दा को विदा किया। उनको तीर दिए और कुछ साथियों के साथ विदा किया।

आत्म परिचय से नामकरण

जब गोविन्द सिंह की माधव दास वैरागी से भेंट हुई थी उस समय माधव दास ने गुरु को अपना परिचय देते हुए अपने आपको बन्दा कहा था। इसीसे उसे बन्दा के नाम से सम्बोधित करते हैं और वह बन्दा के नाम से विख्यात है।

बन्दा की नीति पटुविजय

बन्दा नीति के प्रकाण्ड पण्डित थे। चाणक्य की भांति इन्होंने नीति से काम लिया। राजस्थान से होते हुए भरतपुर आए। वहां के नागरिकों ने उन्हें पूरा सहयोग दिया। भरतपुर से सीधा चलकर अलवर आए फिर फतेहबाद कैथल, भिवानी और पानीपत आदि को फतह किया।

उन्होंने भरतपुर से दिल्ली न आकर लाहौ की तरफ रुख किया। इससे यह सिद्ध होता है कि बन्दा की जीत की एक योजना थी और अपनी नीति के अनुसार उन्होंने गुरु के शत्रुओं से और उनके पुत्रों के हत्यारों से बदला लेने के लिए ही सरहिन्द में ईंट से ईंट बजाई। और वहां के सूबेदार वज़ीर खां और सुच्चा नन्द को खत्म किया। क्योंकि वज़ीर खां ने ही गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों को दीवार में चुनवाने की आज्ञा दी थी। दीवान ने सूबेदार को यह सलाह दी थी कि शत्रु के बच्चों को मार देना उचित है जिससे आगे भी शत्रु से भय न रहे।

बन्दा को मांझा और मालवा ने पूरा पूरा साथ दिया। बन्दा ने असाधारण विजय कर सरहिन्द और मध्य पंजाब पर पूरा अधिकार किया और सहारनपुर और उसके समीप के क्षेत्रों पर भी विजय प्राप्त की। इसके बाद बन्दा ने जलालुद्दीन के गांव पर हमला किया। उसके दस हज़ार साथियों को खत्म किया। और २६ नवम्बर को गुरु तेग बहादुर के घातक को खत्म किया। इसी प्रकार संगरूर के सरदार उस्मान खां को जिसने बुद्ध शाह को मारा था क्योंकि बुद्ध शाह ने गुरु गोविन्द सिंह की सहायता की थी, मौत के घाट उतार दिया।

इस प्रकार बन्दा ने लगातार ४ वर्ष तक युद्ध किया और शत्रुओं से बदला लेता रहा। १७१० ई० में चम्बा के राजा उदयसिंह की लड़की से शादी की परन्तु अपना धर्म युद्ध जारी रखा। जो घोषणा फतेह दर्शन की उन्होंने की थी उसे क्रियान्वित करते रहे।

इस प्रकार बन्दा बैरागी ने दिल्ली सीधा न आकर दिल्ली के चारों ओर के क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया और अपना राज्य स्थापित किया। यमुना और रावी का क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया। इस से लाहौर और दिल्ली का सम्बन्ध टूट गया था। यहीं बन्दा के प्रकाण्ड राजनीति के पाण्डित्य का परिचय मिलता है। जब दिल्ली के राजा फर्रुखसियर ने देखा कि बन्दा ने पंजाब में अपनी शक्ति बढ़ा ली है और छोटे-छोटे क्षेत्रों को विजय कर लिया है तब उसको बहुत भय हुआ कि कहीं बन्दा जिस नीति से काम ले रहा है और दिल्ली के चारों ओर अपना अधिकार जमा रहा है उससे दिल्ली को भी सामप्त न कर दे। इस भय को दूर करने के लिए राज्य कर्मचारियों को बुलाया और कहा कि जो बन्दा को पकड़ कर लाएगा उसे जागीर दी जाएगी। किन्तु किसी को भी उसे पकडने का साहस न हुआ। इस पर राजा परेशान हुआ। अन्त में यह निश्चय हुआ कि बन्दा के साथियों में फूट डाली

जाए और उन्हें अधिकार का लोभ देकर बन्दा की शक्ति को कम किया जाए। इस प्रकार वह जल्दी नियन्त्रण में आ जाएगा।

फर्रुखसियर की कूटनीति का प्रभाव

फर्रुखसियर बन्दा के साथियों में गुरु-पत्नियों द्वारा फूट डलवाने में सफल हो गया। बन्दा बहादुर के कुछ साथी उसका साथ छोड़ गए और तत्खालसा के नाम से बन्दा बहादुर के साथ युद्ध किया। वह राजा की तरफ से वीर बन्दा से लड़े जिस से बन्दा बहादुर की शक्ति कम हुई। वीर बन्दा ने उन लोगों को बहुत समझाया और कहा कि तुम बुरी तरह मारे जाओगे। तुम्हारी इस शरारत से देश की बहुत हानि होगी। आपस में फूट मत डालो। लेकिन बन्दा की उन्होंने एक न सुनी। वे 'लोभ के जाल' में आ चुके थे। आपसी फूट से राष्ट्र को तबाही का सामना करना पड़ा।

अन्तिम लीला

बन्दा की शक्ति कम होने पर उसे पकड़ लिया गया और दिल्ली में बन्दी कर दिया गया। इन्हें बहुत कष्ट दिया गया। यहां तक कि इनके बच्चे का कलेजा निकाल कर इनके मुंह पर मारा गया। लेकिन क्या मजाल कि इस महापुरुष ने उफ की हो। इनके पांव तनिक भी लड़खड़ाए नहीं। भारत मां के इस सपूत ने अपनी वीरता और धर्मयुद्ध के कारण इतिहास में मरकर भी अमर स्थान प्राप्त किया है।

उन्होंने जीवन के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किया उसी पर वे जीवन पर्यन्त चलते रहे और बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने लक्ष्य से विचलित न हुए।

वे सच्चे समाज सेवी, समाज सुधारक थे। उन्होंने उस समय की सामाजिक कुरीतियों और जागीरदारों द्वारा किसानों के लूट खसोट से जनता को बचाया और अपना राज्य स्थापित कर लोहगढ़ राजधानी बनाकर नानक शाही के नाम पर अपना सिक्का चलाया जो आगे चलकर १७१७ तक चला। इसी के पश्चात् रणजीत सिंह ने पंजाब में बन्दा के आत्म बल की प्रेरणा से ८० साल बाद स्वतंत्र राज्य को फिर स्थापित किया। रणजीत सिंह ने बन्दा के सिक्कों को ही चलाया और फतेह दर्शन की घोषणा के आधार पर सतलुज से लेकर काबुल कन्धार तक विजय की पताका फहराई।

इसी प्रकार दक्षिण में मराठों ने, राजपूताना में राजपूतों ने पुनः हिन्दू राज्य स्थापित किए। इसी आन्दोलन द्वारा १८५७ की महान् क्रान्ति हुई। महान् क्रान्ति

में भारत को विदेशी दासता से मुक्ति न मिलते हुए भी स्वतन्त्रता संग्राम का आन्दोलन १९४७ तक चलता रहा। बन्दा ने ५०० वर्षों से जिस स्वतन्त्रता संग्राम आन्दोलन का बीज बोया था वह १९४७ में प्रतिफलित हुआ। किन्तु अभी भी अधूरी स्वतंत्रता ही मिली है क्योंकि आज भी हम विदेशी आक्रमण के पंजे में हैं।

उस महान् आत्मा वीर बन्दा की प्रेरणा की आज भी राष्ट्र को पूर्ण आवश्यकता है।

भारतीय बलिदान परम्परा के प्रतीक—वीर बन्दा वैरागी

अशोक कौशिक

भारत की अजेय संस्कृति किसी भी शस्त्र से सुतीक्ष्ण है। भय तथा निराशा पर जय करने वाले, अपने सत्प्रयत्नों से अपने जीवन को नये निर्माण के लक्ष्य की ओर ले जाने वाले भारतीय अभिनन्दनीय माने गए हैं। भारत ने शान्ति और धैर्य के साथ विश्व का उत्थान और पतन देखा है और अपनी मर्यादा के निर्वाह के लिए वह आहुतियां भी देता रहा है। हम इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि देश के लिए किया गया (कोई भी) बलिदान अमर होता है। बलिदानी भारत का इतिहास साक्षी है कि अपने देश की सुरक्षा के लिए हमारी वीरता की परम्परा जीवित रही है। भारत अपने शौर्य और बलिदान के इतिहास लिखता रहा है और भविष्य में भी लिखता रहेगा।

भारत सत्य का देश है और संकल्प की भूमि है। वीर योद्धा सत्यवादी होता है और वीरता का पक्ष उसके लक्ष्य के अनुरूप होता है। भारत की शान्तिप्रियता तथा उसकी जीवन-मीमांसा को जब कोई चुनौती देता है तब यह सोया सिंह जाग उठता है। विश्व का इतिहास साक्षी है कि भारत वासी कभी किसी को छेड़ते नहीं किन्तु जब कोई उन पर अन्याय करने लगता है तब वे उसको छोड़ते भी नहीं। आक्रमणकारी का विनाश स्थायी शान्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है। वीरता की भारतीय परम्परा अत्यन्त श्रेष्ठ है और इसका आधार नैतिक तथा आध्यात्मिक है। भारतीय की दृष्टि में सन्त और सैनिक समान ही माने जाते हैं। भारत का आदर्श रहा है—

अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

शास्त्रों की अवहेलना करने वाले को शस्त्र से सीधा करना हमारी परम्परा रही है। ऐतिहासिक महापुरुषों वीरों और बलिदानियों के सहारे ही हमारी सांस्कृतिक एकता स्थिर है। रामायण तथा महाभारत के युग से प्रारम्भ कर अद्यतन इतिहास से प्रमाणित है कि हमारे पूर्वज वीर, प्रतापी और युद्ध-कला प्रवीण होते आए हैं। व्यवस्थित और सुसंगठित सैन्यशक्ति भारत की विशेषता रही है। भारतीय सैन्य व्यवस्था का यह समग्र रूप वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थ ही नहीं अपितु परवर्ती काल की रचना राजतरंगिणी तक में प्राप्य है। 'अक्षौहिणी' भारतीय सेना की सबसे बड़ी इकाई और 'पत्ति' सबसे छोटी इकाई मानी जाती थी। भारतीय सैना का वर्ग-विभाजन विश्व की किसी भी सैना से अधिक सुव्यवस्थित, समुन्नत और अनुशासित था।

भारत भरत की अजेय भूमि है। वीर प्रसविनी भूमि, नमन की धरा, अभिवन्दनीय धरती, संस्कृति और सभ्यता का तीर्थ। राम की अमर भूमि और कृष्ण की कर्म भूमि। सत्य एवं कर्तव्य की जन्म भूमि, धर्म-कर्म की भूमि। वैदिक काल से प्रारम्भ कर ईसवी पूर्व चौथी शताब्दी तक विजय की दृष्टि से कभी किसी ने इस पर आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं किया। ईसा के बारह सौ वर्ष बाद तक भी किसी आक्रमणकारी का सपना साकार न हो सका।

भारत की माटी अपनी आहुतियां देकर भी अपनी मर्यादा की रक्षा करती आई है। भारतीय बलिदान के इस यज्ञ को देश ने सदा जीवित रखा। युगधर्म की पुकार पर किसी भी समय कोई भी भारतीय शस्त्र संधान करने के लिए उद्यत रहता आया है।

इसी शृंखला के बलिदानी वीर बन्दा वैरागी थे। पंजाब की भूमि सदा से ही वीर पुरुषों की भूमि रही है। एक सहस्र वर्ष तक उत्तर से आने वाले हर आक्रमणकारी का सामना उसने किया। पंजाब की धरती पर कला और साहित्य-साधना की अपेक्षा वीरता, बलिदान तथा सैनिक प्रवृत्तियों का ही विकास हुआ। पौरस से प्रारम्भ कर प्रत्येक पल, प्रत्येक काल में पंजाब ने अपनी तलवार को म्यान के भीतर नहीं रखा। पंजाब की धार्मिक भावनाओं का पुनरुत्थान भी सैनिक चेतना एवं युद्ध संकल्पों के आधार पर हुआ। सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु नानक का प्रांजल व्यक्तित्व पूजनीय बन गया है। गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुनदेव इसी शृखला के गुरु रहे हैं।

गुरु अर्जुन देव ने जहांगीर के विरुद्ध उसके बेटे खुसरो की सहायता की, इससे जहांगीर उन पर क्रुद्ध हो गया। तब इन्हीं गुरु अर्जुन देव ने गुरुवाणी का संकलन कर उसे ग्रन्थ साहब के स्वरूप में संजोया। जहांगीर के क्रोध के कारण गुरु अर्जुन देव को अपनी आहुति देनी पड़ी थी। इसका गहरा प्रभाव उनके उत्तराधिकारी गुरु हरगोविन्द पर पड़ा तब उन्होंने समस्त सिक्ख जाति को शस्त्र धारण करने का उपदेश एवं आदेश दिया। उन्होंने बादशाह शाहजहां के शासन-काल में लाहौर के नवाब से सात बार युद्ध किया। गुरु हरगोबिन्द के बाद गुरु हरदास और गुरु हरकिशन हुए और उनके बाद इस गद्दी पर बैठे बलिदान शिरोमणि गुरु तेग बहादुर। नानक पंथ धर्म से राजनीति की ओर गुरु हरगोविन्द के युग में ही अभिमुख हो गया था। गुरु हरगोविन्द ने अपनी धार्मिक गद्दी को राजनैतिक महत्व प्रदान करने के लिए 'तख्त अकाल बूंगा' के नाम से सम्बोधित कराया। इस सम्बोधन का एक ही लक्ष्य था कि सिक्खों के भीतर यह भावना भर दी जाए कि मुगल सम्राट् झूठा बादशाह है। लाहौर के मुगल नाज़िम ने बादशाह को सूचना दी कि गुरु हरगोविन्द स्वयं दिल्ली का बादशाह बनने का स्वप्न देख रहा है। तब शाहजहां ने उनको दबाने का हर प्रयत्न किया किन्तु वह सफल नहीं हो सका।

परम्परा के अनुसार गुरु की गद्दी पर बैठते समय उनके सामने कृपाण और सैली रखी जाती थी। गुरु तेगबहादुर से पूर्व के गुरु सैली ही उठाते थे पर गुरु हर गोविन्द ने कृपाण उठा कर इस परम्परा को नया मोड़ दिया था। वयोवृद्ध गुरु तेग बहादुर का गद्दी पर बैठना औरंगजेब को बहुत खटका। उसने न केवल जजिया-कर लगाया अपितु हिन्दू जनता पर और भी भांति-भांति के अत्याचार किए। तब गुरु तेगबहादुर के मुख से निकला कि जब तक किसी महात्मा का बलिदान नहीं हो जाएगा तब तक इस दुःशासन का अन्त नहीं होगा।

बादशाह औरंगज़ेब ने गुरु तेग बहादुर को दिल्ली बुलाया। उस समय उनके साथ साहसी वीर मतिदास भी गए। परन्तु आगरा पहुंचते ही गुरु तेग बहादुर को बन्दी बना लिया गया। इस आहुति में मतिदास का बलिदान हुआ। औरंगजेब ने आदेश दिया कि उसके सिर पर आग रखकर उसके बदन को आरे से चीरा जाए। जब तक आरा चलता रहा मतिदास का होश बना रहा। वह ईश्वर का स्मरण करता रहा। उसके बाद गुरु तेग बहादुर की बारी आई। उनका शीश काटा गया। (जिस की स्मृति में आज गुरुद्वारा शीशगंज दिल्ली में विद्यमान है। किन्तु भाई मतिदास की स्मृति में कहीं कुछ भी नहीं। अब थोड़े समय से जनसंघ प्रशासन ने

फव्वारे वाले चौक का नाम भाई मतिदास चौक रख कर उसकी स्मृति को ताजा करने का यत्न किया है ।)

गुरु तेग बहादुर के दिल्ली पहुंचकर बलिदानी बनने की कथा भी स्वयं एक मर्मान्तिक एवं हृदयविदारक इतिहास होने के साथ-साथ वीरतापूर्वक आत्माहुति का ज्वलन्त इतिहास भी है । कश्मीर के ब्राह्मणों को जब धर्म परिवर्तन के लिए विवश किया जा रहा था, उन पर अत्याचार किया जा रहा था और उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया जा रहा था तब कुछ ब्राह्मण जब गुरु तेगबहादुर के समीप अपना दुखड़ा रोने आए तो उस समय उनके सुपुत्र गोविन्दसिंह भी वहीं बैठे थे । गुरु तेगबहादुर ने जब उन ब्राह्मणों की करुण कथा सुनी तो उनके मुख से सहसा निकल गया—'किसी महापुरुष के बलिदान के बिना अब हिन्दू धर्म की रक्षा सम्भव नहीं प्रतीत होती ।' यह वाक्य सुनते ही गोविन्दसिंह के मुख से निकल पड़ा—'पिताजी ! आपसे बढ़कर इस समय दूसरा महापुरुष कौन होगा ?' पिता को पुत्र की बात चुभ सी गई और उन्होंने भी तुरन्त ही बलिदानी बनने का निश्चय कर लिया । तदनुसार औरंगज़ेब को प्रवंचनापूर्वक पत्र लिखा गया और इसी प्रक्रिया में वे दिल्ली गए । ११ नवम्बर १६७५ को दिल्ली चांदनी चौक में उनका बलिदान हुआ ।

ऐसी भीषण भयावह परिस्थिति में १६७५ में गोविन्दसिंह दशम गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हुए थे । उस समय उनकी आयु ६ वर्ष की थी । कालान्तर में गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख-पन्थ का तो कायाकल्प ही कर दिया । उन्होंने ही ३० मार्च १६९९ को 'खालसा दल' की स्थापना की । उन्होंने सिक्ख धर्म को बिलकुल ही नया रूप दिया, नया परिवेश पहनाया । उस परिस्थिति में योग और तपस्या उन्हें तनिक भी नहीं सुहाई । वे धर्म-योद्धा थे यही कारण है कि अपनी अनन्य रचना 'कृष्णावतार' में उन्होंने "जूझ मरौं रन में तजि भय, तुमतैं प्रभु श्याम इहै बर पावैं ।" कृष्ण से रण में जूझ पड़ने का ही वर मांगा था ऋद्धि-सिद्धि का नहीं । जूझ मरने वाले खालसा सैनिकों की वेशभूषा प्राचीन भारत के सैनिकों के समान रखकर परम्परा का मान रखा ।●

बन्दा वैरागी इन्हीं गुरु महाराज की खोज थी । मुक्तसर के समीप खिदराना में गुरुजी ने मुगल सेना का जमकर सामना किया परिणाम स्वरूप मुगल सेना को

● गुरु गोविन्द सिंह जी से पौने चार सौ वर्ष पूर्व (९२५ ई०) में त्रिविक्रम भट्ट कृत "नलचम्पू" में भीम राजा के सैनिकों की सज्जा खालसा सैनिकों के समान ककार सहित वर्णित है ।

पीठ दिखाकर भागना पड़ा। अब औरंगज़ेब ने उनसे सन्धि का प्रस्ताव किया और उन्हें अपने समीप बुलाया। गुरुजी उससे मिलने के लिए जब दक्षिण की ओर चले तो मार्ग में उन्हें विदित हुआ कि औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई है। कालान्तर में मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से जब दिल्ली का सम्राट् बना तो उसके साथ गुरु गोविन्दसिंह दक्षिण की यात्रा पर गए। वहीं उनकी भेंट नान्देड़ में हुतात्मा वीर बन्दा वैरागी से हुई, जो उस समय माधौदास नाम से साधु के रूप में ख्यात थे।

गुरु गोविन्दसिंह को साधु माधौदास में प्रतिभा परिलक्षित हुई। उनके सम्मुख उन्होंने मुगल साम्राज्य के हिन्दुओं के प्रति किए गए घोर अत्याचारों का नग्नचित्र प्रस्तुत कर उनका आह्वान सा करते हुए कहा कि उन जैसे तेजस्वी वीर के लिए यह समय तपस्या करने का नहीं अपितु तलवार थामकर धर्म, संस्कृति एवं मातृभूमि की रक्षा करने का है। गुरु गोविन्दसिंह का वर्चस्व एवं प्रतिमा तथा वाणी का ओज, इस सबने साधु को सम्मोहित कर लिया और उनके मुख से निकल गया—"मैं तो आपका बन्दा हूं"।

ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार महाभारत के समय युद्ध भूमि में भगवान् कृष्ण के उपदेश को सुनकर अर्जुन ने कहा था—"स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव"। उसी प्रकार साधु माधौदास ने कहा "मैं तो आपका दास हूं"।

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' को लक्ष्य बना गुरु गोविन्दसिंह ने जब बन्दा से कहा "मैंने आततायियों को विनष्ट कर धर्म की स्थापना का संकल्प लिया है, मुझे तुम सदृश तेजस्वी पुरुष की सहायता चाहिए।" बन्दा ने अपना मस्तक नत कर लिया मानो कह रहे हों 'करिष्ये वचनं तव'। तब गुरु गोविन्दसिंह ने प्रसन्न होकर उनसे कहा था, "तुमने स्वयं को मेरा दास कहा है किन्तु मेरे आशीर्वाद से तुम इस संसार में गुरु पद प्राप्त करोगे।" उस समय उन्होंने पांच बाण भेंट करते हुए उन्हें पांच उपदेश भी दिए थे। वे उपदेश थे—

१) मुस्लिम अराजकता का अन्त करने तक विश्राम न करना।

२) सब कार्य पंच सिक्खों की मन्त्रणा से करना और प्रत्येक कार्य को प्रार्थना से प्रारम्भ करना।

३) कभी भी पंथ का अनादर न करना और स्वयं को कभी गुरु न मानना।

४) कभी पृथक् पंथ की स्थापना न करना। और

५) आजन्म अविवाहित रहना।

जब साधु माधौदास दक्षिण में साधना में रत था उन दिनों में भी उसने मुगलों द्वारा हिन्दुओं पर किए गए अत्याचारों को देखा और सुना था। स्वयं वह पंजाब का रहने वाला था। गुरु गोविन्दसिंह ने जब पंजाब के दिल दहलाने वाले अत्याचारों का वर्णन बन्दा को सुनाया तो ३८ वर्षीय यह युवा साधु देश और जाति की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो गया। उसने गुरु गोविन्दसिंह के जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करने का संकल्प किया और साधु वेश को त्याग शस्त्र धारण कर सरहिन्द की ओर प्रस्थान कर गया।

समरक्षेत्र में जो शस्त्र सन्धान बन्दा ने किया, देश, धर्म एव जाति की रक्षा के लिए जिस त्याग, वीरता, साहस एव बलिदान का उदाहरण बन्दा ने प्रस्तुत किया वह इतिहास के पृष्ठों में यद्यपि अंकित है तदपि अभी हम उच्च स्वर से यह नहीं कह पा रहे हैं कि वह गाथा 'स्वर्णाक्षरों' में अंकित है। विगत एक सहस्र वर्षों में भारत के इतिहास के प्रति जो उपहास किया जा रहा है उसी प्रक्रिया में इस वीर गाथा का भी बलिदान हुआ है। किन्तु वह समय अब दूर नहीं जबकि बलिदानी वीरों की इन अमर गाथाओं को इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों से अंकित किया जाएगा। भविष्य निश्चित रूप से हमारा है। अर्थात् हिन्दू वीरों का है।

एच–१२६, वज़ीरपुर कॉलोनी,
दिल्ली–७
६–११–७०

श्री संयोजक जी,
वीर बन्दा वैरागी समिति।

महोदय,

आपका निमन्त्रण प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अपनी अस्वस्थता के कारण आपके आयोजन में सम्मिलित होने में सर्वथा असमर्थ हूं। इस बात का मुझे दुःख है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपके इस प्रयत्न को पूर्णतया सफल बनाए।

आपका
ओम् प्रकाश
प्राध्यापक इतिहास विभाग,
किरोड़ीमल कालिज,
दिल्ली–७

विशेष

इस पुस्तक का विमोचन तथा उद्घाटन शनिवार, ७ नवम्बर सन् १९७० को सायं ६-४५ पर विट्ठलभाई पटेल भवन में आयोजित बन्दा वैरागी दिवस पर, दिल्ली प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण अडवानी संसत्सदस्य ने किया। इस अवसर पर सर्वश्री मदन लाल पसरीचा संरक्षक बन्दा वैरागी समिति, प्रेमनाथ डोगरा अध्यक्ष जम्मू-कश्मीर जनसंघ, प्रो० बलराज मधोक संसत्सदस्य, उपन्यासकार श्री गुरुदत्त वैद्य, मोहनलाल श्रीवास्तव, पं० रामगोपाल शास्त्री, डॉ० वशिष्ठ कुमार पुष्कर्णा, वासुदेव महाशय आदि ने बन्दा को अपनी श्रद्धांजलि दी।

● पुस्तक श्री राजपाल शास्त्री और सुन्दरदास जी की देख-रेख में छपी।

भारत के साचार पत्र-रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
पं० सं० (रजि० नं०) १६७७२/७०

भारतीय साहित्यकार संघ की ओर से श्री राजपाल शास्त्री द्वारा
नाथ प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली द्वारा कम्पोज एवं फ्रैंडस प्रैस, बाग कड़ेखां में मुद्रित तथा
७/२०८, रमेश नगर मे प्रकाशित।

Rgd. No. 19772/70

Cover and pages 1–4, 79–94 printed at
NATH PRINTING PRESS, WZ–77, Basai Darapur,
New Delhi-15.